हमारे साहित्यकार

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :

स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-14-6

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : पचहत्तर रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

HAMARE SAHITYAKAR (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 75

प्रकाशकीय

भारत के प्रथम ब्रिटिश गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने एक बार कहा था कि 'यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए, और दूसरे में शेक्सपियर के साहित्य को रखा जाए और मुझसे पूछा जाए कि मैं किसे अधिक मूल्यवान समझता हूँ तो मैं भारत जैसे विशाल देश में ब्रिटिश साम्राज्य को ठुकरा दूँगा, किन्तु मैं अपने महाकवि शेक्सपियर को नहीं त्यागूँगा। फिर भारत का साहित्य जगत में अवदान विश्व में अनमोल है। साहित्य की दृष्टि से भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत में डुबकी लगाकर जिन अमूल्य विचार रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है वह अतुलनीय है, उसके सम्मुख शेष विश्व की सम्पदा फीकी पड़ जाती है।' भारतीय साहित्य जहाँ गौरवमय अतीत का चित्रण करता है वहाँ वर्तमान की दशा बताकर भविष्य को उज्ज्वल दिशा देने का कार्य करता है जिससे व्यक्ति जीवन और समाज-राष्ट्र जीवन अपना अभ्युदय और निश्रेयस सिद्ध कर सके तथा विश्व में पुनः अपना योग्य स्थान पा सके।

प्रस्तुत पुस्तक में हमारे साहित्यिक मनीषा से सम्बन्धित लेख डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के द्वितीय एवं चतुर्थ खण्ड से संकलित हैं। परम श्रद्धेय स्वामी अमृतरामजी महाराज 'राम स्नेही' ने इस पुस्तक का व्ययभार वहनकर मुझे अपना आशीर्वाद दिया है। प्रभु से प्रार्थना है कि उनकी मेरे पर सदैव कृपा दृष्टि बनी रहे। हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स का प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग एवं परमपूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

महर्षि वाल्मीकि का दिव्य ज्ञान

प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार मिचलेट ने वाल्मीकि रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने भी महान् कार्य किया है या महान् आकांक्षाएं संजोयी हैं, उसे रामायणरूपी अमृत की प्याली से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है, यूनान छोटा और तंग है तथा वहाँ मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा मैं वहाँ हांफ जाता हूँ। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहाँ मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण—हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रन्थ, जिसमें कहीं लय भंग नहीं। वहाँ एक अपार शान्ति का राज्य है, कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द्र है जो सब जीवों पर प्रेम, दया, क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।'

संस्कृत पद्य के प्रथम सूत्रधार महर्षि वाल्मीकि ने इस अद्‌भुत ग्रन्थ की रचना की, जिसकी सात्विक सुन्दरता और आध्यात्मिक ऊँचाइयों ने कालान्तर में अनेक विद्वानों और कवियों का मार्गदर्शन किया। विश्वभर के साहित्य में रामायण जैसा मनमोहक और कोई ग्रन्थ नहीं है। कोई ऐसा आदर्श नहीं जो महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में न दिखाया हो।

वाल्मीकि का जन्म

इनका जीवन-वृत्तान्त कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। कुछ पुराणों के अनुसार, यह माना जाता है कि वे पहले रत्नाकर नाम के एक डाकू थे, जो अक्सर अनजान राहगीरों को लूट लेता था और उनको मार भी देता था। देवर्षि नारद से भेंट के बाद वाल्मीकि के अन्दर का सोया हुआ सन्त अचानक जाग गया। जब रत्नाकर नारदजी को मारने के लिए उद्यत हुआ तो नारदजी ने उससे पूछा कि आप यह पाप क्यों कर रहे हैं? इस पर रत्नाकर ने उत्तर दिया कि यह लूट-मार और हत्याएं वह केवल अपने परिवार को पालने के लिए कर रहा है। नारद ने कहा कि एक बार वह अपने परिवार के सदस्यों से पूछ आए कि क्या वे उसके पाप के भागीदार होंगे? जब रत्नाकर की पत्नी और बच्चों ने उसके पाप का भार लेने से इनकार कर दिया

तो रत्नाकर नारद के पांवों में गिर पड़े और उनसे ज्ञान देने की याचना की। नारद ने उन्हें ज्ञान दिया और उनका नाम बदलकर 'राम' रख दिया। यहीं से रत्नाकर के जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन शुरू हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि महापुरुषों के जीवन में एक घटना से परिवर्तन आता है और फिर वे प्रगति के मार्ग पर बढ़ते जाते हैं। इस छोटी घटना ने क्रूर डाकू रत्नाकर को महर्षि वाल्मीकि बना दिया। इस प्रकार छोटी-छोटी घटनाओं से अचानक भोग-विलास में डूबे, राजकुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बन गये, एक अनपढ़-फूहड़ आदमी महाकवि कालिदास बना, बंगाल का नास्तिक बाबू नरेन्द्र स्वामी विवेकानन्द बना, एक सरल-सादा लड़का मूलशंकर स्वामी दयानन्द सरस्वती बना और बचपन के बिगड़े हुए मोहनदास, महात्मा गांधी बन गये। इसी प्रकार तुलसीदास के जीवन में भी एक छोटी सी घटना ने उन्हें महान् सन्त गोस्वामी तुलसीदास बना दिया। कुछ पूरा ज्ञात नहीं है कि रत्नाकर का जन्म कहाँ हुआ था, किन्तु यह पक्का है कि उनके भीतर का कवि उनकी नारद से भेंट के बाद ही प्रस्फुटित हुआ था। हर सन्त का कुछ भूतकाल होता है और हर पापी दुष्ट का भविष्य होता है। उसमें भी अचानक सुधार आ सकता है। यह कहना कठिन है कि कब किस रत्नाकर के भीतर से महर्षि वाल्मीकि प्रकट हो जाएं।

पद्य का जन्म

हर कवि धरती पर प्रभु का सन्देशवाहक होता है। कवि अपनी आत्मा और हृदय पूर्णतया अपने गीतों में उड़ेल देता है, इसलिए किसी कवि का अवतरण मानवता के लिए एक वरदान होता है। इससे भी अधिक धन्य है काव्य, जो उस कवि को अजर-अमर बना देता है। ऋषि वाल्मीकि महाकाव्य रामायण के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए हैं। श्री अरविन्द घोष के अनुसार—यह बड़ा अद्‌भुत संयोग है कि रामायण का प्रादुर्भाव बहुत ही वेदना और मर्मस्पर्शी करुणा की स्थिति में हुआ। एक बार वन में वाल्मीकि ने एक शिकारी द्वारा तीर मारने से घायल दो क्रौंच-पक्षियों में से एक को तड़प-तड़पकर मरते देखा तो उनके मन की करुणा और दुःख इन शब्दों में काव्य के रूप में फूट पड़े—

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समः।
यत्क्रौंञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

ऐसा मानते हैं कि इन पंक्तियों के आधार पर ही वाल्मीकि ने पूरी रामायण की रचना की। प्रसिद्ध साहित्यकार मोनियर विलियम्स लिखते हैं—'रामायण महाकाव्य की सरलता जो संस्कृत पद्य की ऊँचाइयों को छूती है, इसमें वीर रस के दृश्य बहुत सुन्दर ढंग से संजोए हुए हैं, मानव की आन्तरिक भावनाएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं और बहुत सुन्दर प्रस्तुत किया गया है।' इस प्रकार यह एक

सर्वोत्तम काव्यरचना है। यह फ्रांसीसी इतिहासकार लिखते हैं, 'रामायण एक विशाल और लहलहाते हुए उद्यान की तरह हैं जिसमें कई प्रकार के फल और फूल है, जहाँ शुद्ध जलधारा बहती है और जहाँ आनन्दपूर्ण भ्रमण की पूरी सुविधा है।' आध्यात्मिक विचारक महर्षि वाल्मीकि आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाशपुंज हैं। उन्हें अक्सर योगवासिष्ठ का रचयिता भी माना जाता है। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार 'योगवासिष्ठ वेदान्त पर सर्वोत्तम ग्रन्थ है।' यह प्राचीन भारत की भारतीय दर्शन के विषय में बहुत उत्तम कृति है।

नैतिक ज्ञान

रामायण में एक उन्नत सभ्य समाज का चित्रण मिलता है जिसमें भौतिक प्रगति के साथ मानसिक उन्नति भी देखने को मिलती है। किन्तु ये दोनों शक्तियाँ अध्यात्म और वैचारिक शुद्धता की सीमा में अपना प्रभाव दिखाती हैं। प्रो. ग्रिफिथ ने लिखा है—'रामायण पूरे विश्व में अनूठा काव्य है जिसमें आदर्श और उच्च चरित्र के पात्र भगवान् राम और सीताजी के रूप में हैं। इस ग्रन्थ में काव्य और नैतिकता बहुत सुन्दर ढंग से गुंथे हुए हैं और एक-दूसरे को उन्नत करने का प्रयास करते हैं।'

महर्षि वाल्मीकि एक महान् सन्त थे जिन्होंने समाज को नैतिक जागरण का संदेश दिया। उन्होंने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अनैतिक और पापी लोगों को चुनौती दी।

राजनीतिक दर्शन

वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य के माध्यम से हमें एक सुन्दर सुयोजित रामराज्य की कल्पना दी, जो भारत की प्रमुख विचारधाराओं का सार रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी रामराज्य का आह्वान किया था। वाल्मीकि अराजकता और राष्ट्रीय नियमों के उल्लंघन का घोर विरोध करते थे। रामायण के अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि अराजक जनपद के विषय में लिखते हैं—'किसी भी अनियोजित राज्य में युवा अपने माता-पिता का सत्कार नहीं करते, विद्वान् लोगों की जनहित सभाएं नहीं होतीं, नगर उदास और कान्तिहीन से लगते हैं और उद्यानों में फल-फूल पैदा नहीं होते हैं, ऐसे राज्य में व्यापारी अपना व्यापार ठीक से नहीं कर पाते, साधु-संन्यासी अपना जप-तप नहीं करते और धार्मिक-सामाजिक पर्व ढंग से नहीं मनाए जाते।' महर्षि वाल्मीकि के अनुसार, एक आदर्श राज्य को एक कुशल नैतिक राजा, सारी जनता और अपने मंत्रियों के सहयोग से कुशलतापूर्वक चला सकता है।

महर्षि वेदव्यास

महर्षि वेदव्यास की पूजा समस्त गुरु-परम्परा की पूजा है।

वेद विश्व का प्रथम ज्ञानालोक है। उस पावन प्रकाश को विधिवत सम्पादित करके मानवता की भावी पीढ़ियों के लिए सुलभ बनाने वाले भगवान् वेदव्यास विश्व के प्रथम एवं महानतम ज्ञान सम्पादक हैं। विश्व के सर्वोच्च दर्शन वेदान्त के द्रष्टा होने के कारण वे विश्व के प्रथम कोटि के महानतम दार्शनिक हैं। महाभारत जैसे ग्रंथ के रचयिता होने के कारण वे विश्व के प्रथम विश्वकोश के निर्माता भी हैं। पुराणकर्ता के रूप में विश्व के प्राचीनतम एवं महानतम पुराणेतिहासकार है। विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के द्रष्टाकवि के रूप में विश्व के महानतम महाकाव्यकार हैं। श्रीमद्भागवत्, महापुराण के रचयिता के रूप में भक्ति के भी महानतम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार भगवान् वेदव्यास विश्व के महानतम गुरुओं में पूज्यतम पद पर प्रतिष्ठित हैं। उनकी पूजा वास्तव में ज्ञानगंगा की पूजा अथवा समस्त गुरु-परम्परा की पूजा है।

प्राचीन भारत में ऐसी प्रथा थी कि श्रावणी अर्थात् श्रावण मास की पूर्णिमा के अवसर पर जब वर्षा का वेग कम होने लगता था, वेदादि-शास्त्रों के पठन-पाठन का क्रम चालू होकर 11 मास अर्थात् आषाढ़ मास की पूर्णिमा पर्यन्त बराबर नियत रूप से चलता रहता था। एक मास के वार्षिक अवकाश के उपलक्ष में आषाढ़ पूर्णिमा के पर्व को विशेष पर्व के रूप में मनाया जाता था। उसी का नाम व्यास-पूजा रखा गया था। उस अवसर पर प्रत्येक छात्र अपने पूज्य व्यास अर्थात् गुरु के प्रति अपनी विशेष श्रद्धा को प्रकट करता हुआ कुछ न कुछ दक्षिणा (भेंट) करता था।

गुरु शब्द दो अक्षरों के मेल से बना है—गु+रु=गुरु अर्थात् अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना। वेदों में ज्योतिस्वरूप परमात्मा से प्रार्थना की गई है, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (हे भगवान्! मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ) मानव देहधारी गुरुओं का भी यही कर्तव्य है कि वे अपने शिष्यों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जावें।

उनके ज्ञानामृत ने भारत के कोटि-कोटि सुतों को विगत हजार वर्षों से हजारों विपदाओं एवं आपदाओं के थपेड़ों में भी नवप्राण देकर जाति को जीवित रखा।

हमारी संस्कृति हमारा जीवनरस है। इसे खोकर हमारे पास कुछ नहीं रह जाएगा।

आज से 5 हजार वर्ष पूर्व एक ही समय में ऐसे दो व्यक्तियों का जन्म हुआ जिनके उदात्त मस्तिष्क की छाप हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बहुत गहरी पड़ी है। संयोग से उन दोनों का नाम कृष्ण था। एक को द्वैपायन कृष्ण कहा जिन्हें सारा देश महर्षि वेदव्यास के नाम से जानता है और जिसके मस्तिष्क की अप्रतिहत प्रतिभा से आज तक हमारे धार्मिक जीवन और विश्वासों का प्रत्येक अंग प्रभावित है।

भारतीय साहित्य और हिन्दू संस्कृति पर व्यासजी का बहुत बड़ा ऋण है। जगत् के महान् पथप्रदर्शक और शिक्षक हैं।

भगवान् व्यास कल्पान्त तक रहेंगे। श्री आद्य शंकराचार्य ने उनके दर्शन पाए थे। और भी कई महापुरुषों को वेदव्यासजी का साक्षात् लाभ हुआ था, ऐसा वर्णन मिलता है।

भगवान् व्यास महाकवि, सम्पादक, दार्शनिक, विश्वकोश के निर्माता, धर्मप्रणेता, समाज विधायक, राजनीतिज्ञ, संत तथा ब्रह्मर्षि सभी कुछ का एक अद्भुत व्यक्तित्व लिए हुए थे। वही विश्व के निर्माता के सर्वप्रथम इतिहासकार तथा संस्कृत विश्वकोश के निर्माता हैं। सर्वतोमुखी प्रतिभा के क्षेत्र में वह अद्वितीय हैं।

सारे संसार का ज्ञान उन्हीं से प्रकाशित है। सब ज्ञान व्यासदेव की जूठन है।

व्यासजी के हृदय और वाणी का विकास ही समस्त जगत् का और उसके ज्ञान का प्रकाश और आलम्बन है।

वेदव्यास महर्षि पराशर के पुत्र थे। इनका जन्म कैवर्तराज की पोष्य पुत्री सत्यवती के गर्भ से हुआ था।

इनका जन्म द्वीप में होने के कारण नाम द्वैपायन पड़ा। शरीर का वर्ण श्याम है इससे कृष्ण द्वैपायन हैं और वेदों का विभाग करने के कारण वेदव्यास हैं।

बदरीवन में रहने के कारण बादरायण है। बदरीवन में शम्याप्रास में अपना आश्रम बनवाया।

पैदा होते ही माता की आज्ञा लेकर तप करने चले गए। जाते समय कह गए कि जब कभी तुम्हें मेरी आवश्यकता पड़े मुझे याद कर लेना। मैं उसी समय तुम्हारे पास आऊंगा।

व्यास का अर्थ है विस्तार, वेदों का विस्तार इन्हीं से हुआ। इसलिए वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं।

व्यास धातु के तीन मुख्य धातु-अर्थ प्रसिद्ध हैं—

(क) विस्तार—फैलाव, वृद्धि जैसे समासपूर्वक किसी पदार्थ का संक्षेप वर्णन करना। इसी प्रकार 'व्यासपूर्वक', किसी पदार्थ का विस्तारपूर्वक वर्णन करना।

(ख) विभाग—इस धात्वर्थ के आधार पर भूमि आदि किसी भी गोल पदार्थ को दो समान भागों में बांटने वाली (काल्पनिक) मध्य रेखा को व्यास कहते हैं।

(ग) उपदेश, प्रवचन पाठ। इसके आधार पर शास्त्रकथा करने वाले उपदेशक को व्यास कहते हैं।

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वं श्रुत्वाचैवाव धार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

धर्म का सार-सर्वस्व सुनो और सुन कर उसे अपनाओ, दूसरों द्वारा किया हुआ जो व्यवहार स्वयं को प्रतिकूल लगे वैसा व्यवहार स्वयं दूसरों के प्रति न करो।

× × ×

पाश्चात्य देशों के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं जिन बातों को हृदय के आवेग से सत्य मान लेता था। अब उन्हें प्रत्यक्ष सत्य के रूप में देख चुका हूं। पहले मैं अन्य हिन्दुओं की तरह विश्वास करता था कि भारत पुण्यभूमि है कर्मभूमि है किन्तु आज मैं यह दृढ़ता के साथ कहता हूं कि यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा स्थान है जहां मानव जाति के हृदय में क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वापेक्षा अधिक विकास हुआ है तो वह हमारी मातृभूमि भारतवर्ष है। विदेशों में लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदय में जड़वाद की जो अग्नि धधक रही है उसे बुझाने के लिए जिस अमृतधारा की आवश्यकता है वह भारत में ही विद्यमान है।

—स्वामी विवेकानन्द

महर्षि वेदव्यास का राष्ट्रदर्शन

'भगवान् वेदव्यास भारतीय ज्ञान गंगा के भागीरथ हैं। जिस प्रकार इस देवनिर्मित देश को किसी पुरा-युग में भागीरथ ने अपने उग्र तप से गंगावतरण के द्वारा पवित्र किया था, उसी प्रकार पुराण-मुनि वेदव्यासजी ने भारतीय लोक साहित्य के आदि-युग में हिमालय के बद्रिकाश्रम में अखण्ड समाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति और पुराण की त्रिपथगा गंगा का पहले अपनी आत्मा में साक्षात्कार किया और फिर साहित्यिक साधना के द्वारा देश के आर्य-वाङ्मय को उससे पवित्र बनाया। ज्ञानरूपी हिमवान् के उच्च शिखरों पर बहने वाले दिव्य जलों को मानो वेदव्यास भूतल पर ले आए। उनके द्वारा पूर्वजों के ज्ञान और चरित्रों से गुम्फित सरस्वती लोक के कंठ में आ विराजी।' ज्ञानमार्तण्ड भगवान् वेदव्यास के पावन चरणों पर श्री वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा चढ़ाई हुई यह हृदयहारी भाव-प्रसूनांजलि कितनी अनूठी है।

जहाँ भगवान् वेदव्यास ने वेदों का विभाजन किया; महाभारत जैसे अगाध ज्ञान-भण्डार की रचना की; श्रीमद्भागवत महापुराण जैसे भक्ति के सुधा-सिंधु से मानवता के हृदय की क्यारियों को हरा-भरा कर दिया; वेदान्त दर्शन की रचना द्वारा विश्व मनीषा के मस्तक पर भारतीय तत्त्वज्ञान की विजय पताका फहराई; व्यास स्मृति, पुराण संहिता एवं अध्यात्म रामायण की सर्जना द्वारा विश्व के धर्म वाङ्मय को समृद्ध किया; वहाँ उन महामुनि व्यास ने भारतीय राष्ट्र की ऐसी अद्भुत वंदनाएं गाई हैं कि उनके श्रवणमात्र से आज भी भारतीयों के हृदय में मातृभूमि के अनन्त प्रेम का अगाध अमृतोदधि हिलोरे लेने लगता है।

सौ-सौ स्वर्गों से श्रेष्ठ भरतखण्ड

विष्णु महापुराण में महर्षि व्यास का कथन है—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते, भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात।।

अर्थात् 'स्वर्ग के ३३ कोटि देवता भी यही गीत गाते हैं कि भारत भूमि पर जन्म पाने वाले लोग धन्य हैं। वे कितने सौभाग्यशाली हैं कि वे उस भारत में जन्मे हैं जो स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) का स्वाभाविक सरल मार्ग है। अतः भारतखण्ड

के मनुष्य निश्चय ही हम देवताओं से भी ऊँचे हैं।' अभी तक तो मनुष्य देवताओं की स्तुतियाँ गाते थे पर धन्य हैं पूज्य ऋषि वेदव्यास, जिनके वाङ्मय में हम स्वर्ग के देवताओं को भारतभूमि की स्तुतियाँ गाते हुए पाते हैं। इससे ऊँची राष्ट्रभक्ति क्या हो सकती है जब स्वयं देवता भी राष्ट्र की झुक-झुककर वन्दनाएँ करते हों!

भारत दर्शन ही भगवान् दर्शन

महर्षि वेदव्यास ने देशभक्ति तथा देवभक्ति का अद्‌भुत समन्वय किया है। भारत स्वयं भगवान् का देश है, प्रभु का दिव्य लीलाधाम है। यहाँ के मानवों की प्रशस्ति में, भारत में जन्म के लिए तरसते हुए देवता गाते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं, प्रसन्न एषां रिचदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे, मुकुन्द से वौपयिक स्पृहा हि नः।

(श्रीमद्‌भागवत पुराण)

अर्थात् 'अहो! यह भारतवासी कितने भाग्यशाली हैं कि उन्हें स्वयं भगवान् के देश में जन्म मिला है। धन्य हैं ये कि इन्हें स्वयं अपने हाथों से भगवान् मुकुन्द की सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिसके लिए हम देवता तक भी तरसते रहते हैं।'

पृथोस्तु राजवैन्यस्य तथेक्ष्वा कोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुन हुषस्य च॥

तथैव मुचुकुंदस्य शिवेरौशनीरस्य च
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा,

कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः।
रोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च॥

अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणा बलीयणाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारतभारतम्॥

अर्थात् 'आओ हे भारत! अब मैं तुम्हें भारत देश का कीर्तिगान सुनाता हूँ—वह भारत इन्द्र, मनु वैवस्वत, पृथुवैन्य, मांधाता, नहुष, मुचुकुन्द और औशीनर शिवि को ऋषभ, ऐल, नृग, कुशिक, गाधि, सोमक, दिलीप और अनेकानेक बलवान क्षत्रिय वीरों का प्यारा है।'

जीवित राष्ट्र

भगवान् व्यास का कथन है **मृतं राष्ट्रमराजकम्**—अर्थात् अराजक (बिना राजा के) राष्ट्र मरे हुए के समान है। शान्तिपर्व में व्यासदेव का एक गीत है—'यदि राजा न पालयेत।'

धर्म की जड़ राजा की सुव्यवस्था पर टिकी हुई है। राजा के बिना अराजकता फैल जाए तथा लोग एक-दूसरे को खा जाएं।

राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजमयादेव न खार्दात्त परस्परम्।

अर्थात्, हे राजन्! धर्म ही लोक में राज का मूल है और राजा के भय से ही प्रजाएं एक-दूसरे को खा नहीं जाती हैं।

राजधर्म

व्यासदेव का अर्थगम्भीर वचन है—'जब राजा भली प्रकार दण्ड नीति का पालन करता है तभी सत्ययुग आ जाता है। राजा का आसन राष्ट्र का ककुद है। राजा की उस आदर्श आसन्दी की रक्षा में रहकर प्रजा जिस धर्म का पालन करती है उसका एक चतुर्थांश राजा को प्राप्त होता है।

सर्वे त्यागा राज धर्मेषु दृष्टा, सर्वाः दीक्षा राज धर्मेषु युक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः, सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्ठाः।।

प्रजा ही राजा है

भगवान् व्यास ने राजतन्त्र के भीतर ही प्रजातन्त्र के महान् सिद्धान्त का समन्वय कर दिया—'राजा का शरीर प्रजाएं हैं। अपने आपको बचाने के लिए राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। प्रजा का भी सर्वोत्तम शरीर राजा ही है। राजा को पुष्ट करके वे अपने-आपको ही बढ़ाती हैं।'

राजा कालस्य कारणम्

व्यासजी की लोकविश्रुत सूक्ति है—

कालों वा कारणं राज्ञो राजा व कालस्य कारणम्।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्।।

अर्थात् 'क्या राजा का कारण काल है या काल का कारण राजा, इस विषय में संशय मत करो। राजा ही काल का कारण है।' सच है कि कोई महान् प्रतापी राजा अपने आदर्श राज द्वारा काल के चक्के को जैसा चाहे घुमाकर सत्ययुग को ला सकता है।

वीरभोग्या वसुन्धरा

इस धरती को वीर पुरुष ही भोग सकते हैं, कायर नहीं। व्यासजी की नीति है—

चराणां अन्नं अचराः द्रष्ट्रिणां अपि अदंष्ट्रिणः।
बुधानां अबुधाश्चापि शराणां चैव भीरवः।।

अर्थात्, चर प्राणी अचरा भोजन करते हैं, दांतोंवाले बिना दांतों वालों को खा जाते हैं, समझदार लोगों के लिए मूर्ख ही भोजन है, शूरवीरों के लिए कायर ही भोजन है।

अतः राष्ट्रीय जीवन में कायरता एक लानत है, दुर्बल राष्ट्र को अन्य राष्ट्र खा जाएंगे।

जाग्रत् युवक

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास का संदेश है कि जहाँ जवान जागते हैं वही राष्ट्र जागते हैं—

युवक यत्र जागर्ति, युवको यत्र पश्चति।
तत्र राष्ट्र भवेन्मूनं सर्वदा सुख संयुतम्।।

अर्थात्, जहाँ जवान जाग्रत है, जहाँ जवान आंख खोलकर देखते हैं वही राष्ट्र निश्चय ही सदा सुखी रहता है।

भाग्य और भगवान् निछावर

भगवान् व्यास ने हमारे सामने हरिश्चन्द्र और शिवि, मान्धाता एवं पृथु जैसे आदर्श नृपतियों के गौरवशाली चरित्र रखे जो अपनी प्रजाओं की किंवा प्राणीमात्र की सेवा के लिए भाग्य और भगवान् को भी निछावर करने को उद्यत हैं—

न त्वहं कामये न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्।।

अर्थात् 'हे प्रभो! मैं न तो राज्य की कामना करता हूँ, न स्वर्ग की तथा न ही मोक्ष की। मेरी तो एकमात्र यही कामना है कि मैं दुःख से तप्त प्राणियों के दुःख का नाश कर सकूँ।

भारत राष्ट्र का अनन्त यश गाने वाले राष्ट्रद्रष्टा महर्षि वेदव्यास का अपना यश भी अनन्त है। जब तक धरती सूर्य की प्रदक्षिणा करती है तब तक उनका यश रहेगा। वे भारत के गौरव सर्वस्व हैं। हमारा समस्त राष्ट्रीय गौरव ही उनके ज्ञान-चक्षुओं में समा गया है।

जैसे सागर में खड़ा हुआ मनुष्य सागर से ही जल का लोटा भरकर सागर को अर्घ्य चढ़ा देता है वैसे ही महामुनि वेदव्यास की पावन स्मृति में हम उन्हीं के ज्ञानोद्यान के दो-एक पुष्प सजल नयनों से उन्हीं के चरणों में सादर चढ़ाकर ही अपने वन्दना-व्याकुल हृदय की भावांजलि समर्पित करते हैं।

21 जुलाई, 1959 को
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

महाकवि कालिदास की वैज्ञानिक प्रतिभा

संस्कृत साहित्य गगन के देदीप्यमान दिवाकर महाकवि कालिदास भगवती सरस्वती के हीरक मुकुट के परमोज्ज्वल हीरे हैं। साहित्यिकों के शिरोमणि, नाटक-स्रष्टाओं के गौरव तथा कलावन्तों के अमर प्रेरक के रूप में कविकुल भालतिलक महाकवि कालिदास विश्व साहित्य के इतिहास में एक अद्वितीय विभूति हैं। उनकी उदात्त कल्पना, हृदयहारी भावुकता, कलारुचिर उपमाएं तथा सजीव चित्रांकन कला—यह गुण उनके राष्ट्रीय गौरव तथा विश्व प्रेम से समन्वित होकर उन्हें मानवता की ऐसी अमूल्य आत्मा बनाते हैं जो सदा प्रेम में ही जीती रही तथा संगीत में ही श्वास लेती रही। भारतीय संस्कृति का सत्यम् शिवम् तथा सुन्दरम् अपने पूर्ण रूप से महाकवि कालिदास के शाश्वत महाकाव्य 'रघुवंश', उनके अमर गीतिकाव्य 'मेघदूत' तथा उनके अविनश्वर नाटक 'शकुन्तला' में अमिट रूप से अंकित है।

किन्तु विश्व के सर्वोच्च कलाकार होते हुए भी कालिदास की दृष्टि वैज्ञानिक भी थी, यह बात बहुत कम लोगों को ज्ञात है। इलाचन्द्र जोशी का कथन है कि—'कालिदास की जो मैं सबसे बड़ी विशेषता मानता हूँ, वह यह थी कि उनके अन्तर में परिपूर्ण रसमयता की अखण्ड धारा प्रवाहित होते रहने पर भी वे सच्चे वैज्ञानिक की तरह विश्व के चारों कोनों से सभी विषयों का सही-सही ज्ञान प्राप्त करने की असीम उत्सुकता लिए रहते थे। कोई भी विषय चाहे वह रसायन हो या ज्योतिष, वनस्पतिशास्त्र हो या पक्षी विज्ञान, भूगोल हो या इतिहास, राजनीति हो या धर्मनीति, साहित्य हो या विज्ञान—उनकी सर्वग्राही पैनी दृष्टि से बचा नहीं रह सकता था।'

अनेकता में एकता के दर्शन

ज्ञान के अनन्त भण्डार की अनन्त शाखाएं हैं। उन सबमें ज्ञान संपादन करने का उद्देश्य था विश्वदर्शन की खोज। सृष्टि के वैविध्य के भीतर एक की खोज। जिस एक परम सत्ता को वे अपने अन्तर्जगत् में देख रहे थे उसी को वे बाहर की जड़ प्रकृति में भी देखने के लिए आकुल थे।

भूगोल

जहाँ बाइबिल धरती को चपटा कहती है वहाँ भारतीय वाङ्मय में 'भूगोल' शब्द ही भूमि के गोल होने का परिचायक है। कालिदास पहले कवि थे और बाद में भूगोलवेत्ता। किन्तु उनके काव्य में भूगोल के नदी, पर्वत और देश इतनी सुन्दरता के साथ चित्रित हुए हैं कि स्वयं भूगोल भी उनके रूप पर अपनी जान न्योछावर कर बैठे। लार्ड मैकमोहन द्वारा भारत के उत्तरी सीमान्त पर मैकमोहन रेखा की सीमा निर्धारित करने से सहस्रों वर्ष पूर्व उस अमर कलाकार ने भारत की भौगोलिक सीमाओं का अपने साहित्य की तूलिका से अमिट रूप से अंकन कर दिया था। गिरिराज हिमालय के स्तवन में वे अमर कलावन्त गीत के माध्यम से नृत्य कर उठते हैं—

अस्त्युतरस्यां दिशि देवात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।

उस महाकवि के अमर वाङ्मय में हमें जिस भारत के दर्शन होते हैं उसकी उत्तर दिशा में विश्व भर के पर्वतों का राजा साक्षात् देवमूर्ति हिमालय इस महान् देश के रक्षक के रूप में खड़ा है, सुदूर पूर्व में पूर्व सागर है जो आज बंगाल की खाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तट पर बंग जाति के लोग बसते हैं, जिनके नाम से बाद में वह बंगाल कहलाया। इस महान् भारत देश के चरणों को दक्षिण का महोदधि पखार रहा है। उस अमर चितेरे कालिदास ने दक्षिण पठार के दोनों तटों पर झूमते हुए नारिकेल के वृक्षों की हरीतिमा का जो हृदयहारी चित्र प्रस्तुत किया है, उस पर आज भी मन कुर्बान हो जाना चाहता है। पूर्व के तट पर कलिंग और पाण्ड्य राजाओं के बलशाली राज्य हैं। सुदूर दक्षिण में भगवान् शंकराचार्य की जन्मभूमि नारिकेल के झुरमुटों से सुशोभित केरल प्रदेश के दर्शन होते हैं। भारत के मानचित्र में उस अनोखे भूगोलवेत्ता ने भारत के पश्चिमी तट को 'अपरान्त' नाम से सुशोभित किया है। इस महादेश के पश्चिमोत्तर में वक्ष नदी पार पार्श्व देश (फारस) है जहाँ की लम्बी दाढ़ियों वाले घुड़सवार बड़े प्रसिद्ध हैं। उसी दिशा में हूण और कम्बोज जाति के लोग भी बसते हैं। नगाधिराज हिमालय में उस महाकवि ने उसकी कैलास, गौरीशंकर, गन्धमादन, मन्दार, मेरु तथा सुमेरु जैसी गगनचुम्बी चोटियों का जो चित्र खींचा है, उस शब्दचित्र के दर्शन मात्र से ही हृदय को स्वर्ग के शीतल पवन का स्पर्श लाभ होता है। कालिदास के शाश्वत साहित्य में भारत की अमृत-तोया नदियों का कल-कल निनाद भी श्रवणगोचर होता है। पुण्यतोया भागीरथी, सदानीरा सिंधु, कृष्णवर्णा कालिन्दी, साकेतशोभिनी सरयू, सुधास्रोतस्विनी सरस्वती इत्यादि अमृत की निर्झरिणियों के स्मृतिस्नान से ही जीवन का समस्त कलुष-कल्मष धुल जाता है। त्रिवेणी संगम के कलारुचिर चित्रण से स्वयं काव्य भी धन्य हो उठा है—

क्वचितप्रभा चांद्रमसी तमोभिच्छायाविलीनै शवीलकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेश्विवालक्ष्य नभः प्रदेशाः।

अर्थात्, गंगा-यमुना के संगम में कहीं पर चांद की शीतल चांदनी वृक्षों की छाया में से छन-छनकर अधःतलों को सुशोभित कर रही है, वहीं अन्य स्थलों पर शरत्कालीन आकाश में छाए हुए मेघों में से नीलाम्बर के नीले टुकड़े दिखाई दे रहे हैं।

भगवान् राम की लंका से अयोध्या तक की विमान यात्रा भूगोल की अत्यन्त मूल्यवान सामग्री प्रदान करती है।

'मेघदूत' जैसे रसभीने काव्य में मेघ की यात्रा के बहाने कवि पाठक को मेघ के झीने-झीने पंखों पर बिठाकर सारे गगन की यात्रा कराता है, साथ ही भारत भर का भावप्रेरक परिचय भी प्रदान करता जाता है।

महाकवि कालिदास के रम्य काव्य में भारतीय भूगोल के अतिरिक्त संसार के अन्यान्य देशों की भौगोलिक स्थिति का भी वर्णन बड़ा सुन्दर है।

नक्षत्र विज्ञान

ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है—**वेदस्य चक्षुःकिल शास्त्रमेतत्।** महाकवि कालिदास ने जहाँ अपने गीतों में मानवीय मन की अगाधता का संगीतमुखर चित्र खींचा है वहाँ उसके काव्य में अनन्ताकार के दीप्तिमान नक्षत्रों का गीत भी गूंज रहा है। भगवान् अंशुमालि के सौर परिवार के नवग्रह उस अमित तेजस्वी सूर्यनारायण की सभा के नवरत्न हैं। जैसे आकाश में आदित्य की सभा में नवरत्न चमकते हैं वैसे ही धरती पर अमित तेजधारी विक्रमादित्य की सभा में दीप्तिमान नवरत्न चमक रहे हैं। कविकुलरत्न कालिदास ने जहाँ गगन के नवरत्न का चित्रण किया है, वहाँ धरती के प्रकाशमान नवरत्नों में वे स्वयं एक अन्यतम रत्न के समान जाज्वल्यमान हो रहे हैं। पर वस्तुतः उस महान् कवि मनीषी को केवल एक रत्न-मात्र कहना भी उनका लाघव है। कविवर बच्चन ने लिखा है—

ओ उज्जयिनी के वाग्जयी जगवंदन।
तुम विक्रम नवरत्नों में
यह इतिहास पुराना,
पर अपने सच्चे राजा को,
अब जग ने पहचाना,
थे तुम वह आदित्य, नवग्रह
जिसकी देते फेरी।
तुमसे लज्जित शतविक्रम के सिंहासन ओ उज्जयिनी....

महाकवि कालिदास के साहित्य में सूर्य, चन्द्र, भूमि, मंगल, बुध, बृहस्पति, राहु, केतु इत्यादि ग्रहों का वर्णन है। मंगल को लाल रंग का होने से 'अंगारक' कहा

गया है। राहु, केतु को बुरा फल देने वाला कहा गया है। नक्षत्रों में चित्रा, विशाखा, पुष्य, फाल्गुनी, रोहिणी इत्यादि का वर्णन है। स्वाति नक्षत्र की जलधारा में चातक की चकित पुकारों का वर्णन बड़ा मनोहारी है। 'कुमारसम्भवम्' में धूमकेतु के कुप्रभाव का भी संकेत है।....वाले शेर को सुरद्विष (राहु) की उपमा दी गई है। अब भारतीय पौराणिक कथाओं में कहा गया है कि राहु ही चन्द्रमा को ग्रसने वाला दैत्य है जिसके कारण चन्द्रग्रहण होता है। वास्तव में पृथ्वी की परिक्रमा करने से चन्द्रमा के ग्रह पथ की रेखा तथा सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने से पृथ्वी की ग्रहपथ की रेखा जब परस्पर काटती है तब वहाँ बनने वाले कोणों को ही राहु तथा केतु माना गया है। ऊपर वाले ग्रहपथ रेखा कोण से सूर्यग्रहण तथा नीचे वाले ग्रहपथ रेखा कोण से चन्द्रग्रहण होता है। इन्हीं में से एक को 'राहु' तथा दूसरे को 'केतु' कहते हैं। चन्द्रग्रहण के वास्तविक कारण का कविप्रवर कालिदास को कितना सम्यक् ज्ञान था। यह 'रघुवंश' के निम्न श्लोक से भी नितान्त स्पष्ट है। भगवान् राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वह सीता को वन में छोड़ आए। लक्ष्मण के संकोच पर प्रभु रामचन्द्र कहते हैं—

अवैमि चैना मनघेति किन्तुलोकापव दों बलवान मतो मे।
छाया हि भूमे शशिनो मलत्वेनारोपिता शुर्द्धमतः प्रजाभिः।।

अर्थात्, मैं जानता हूँ कि सीता पूर्णतया निष्पाप है किन्तु लोकापवाद बड़ा बलवान होता है। पृथ्वी की ही छाया चन्द्रमा पर पड़ती है पर उसे ही लोग चन्द्रमा का मल (चन्द्रग्रहण) मान लेते हैं।

कालिदास ने सप्तर्षि मण्डल के सात नक्षत्रों एवं आकाशगंगा का वर्णन भी किया है। चन्द्रमा जब रोहिणी के सम्पर्क में आता है तो उसका सौन्दर्य कई गुणा बढ़ जाता है। 'रघुवंश' में चन्द्रमा को औषधियों एवं वनस्पतियों का स्वामी कहा गया है। द्वितीया के चन्द्रमा के दर्शन को कालिदास ने **नेत्रोत्सवः सोम३वद्वितीयः** कहकर वर्णन किया है। कालिदास को यह भी ज्ञात था कि चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है।

'रघुवंश' में वर्णन है—

हरि दश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बाल चन्द्रमाः।

कालिदास ऋतु-विज्ञान के भी ज्ञाता थे। 'ऋतुसंहार' में संवत्सर को ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त—षड्ऋतुओं में विभाजित किया गया है। कालिदास फलित ज्योतिष के भी ज्ञाता थे। उनके ज्योतिष ज्ञान का प्रमाण उनके निम्नलिखित वचनों से मिलता है—

दृष्टि प्रपतिं परिहृत्य तस्य कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे।

वे अन्यत्र पांच ग्रहों की उच्च स्थिति होने का वर्णन करते हैं—

ग्रहस्ततः पंचभि रुच्च संस्थै ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी।
पुनः मैत्रे मुहूर्ते शशलान्छनेन योग गता सृतरफल्गुनीषु।।

भौतिक विज्ञान

कविकुल-गुरु कालिदास भौतिक तत्त्व विज्ञान के भी ज्ञाता थे। 'मेघदूत' में मेघ का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं—

धूम ज्योति सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।

क्या धुएं, प्रकाश, पानी तथा वायु का मेल ही मेघ नहीं है?

क्व मेघः में कवि ने यह भी ध्वनि पैदा की है कि मेघ केवल इन तत्त्वों के मेल के अतिरिक्त और भी कुछ है। उस क्रांतदर्शी कवि ने उसमें एक आत्मा के भी दर्शन किए हैं तथा कालिदास का मेघ विरही यक्ष की विरह-कथा को सुनता है तथा उसका संदेश भी बहुत दूर उसकी प्रेमिका के पास पहुँचाता है।

समुद्र में ज्वार-भाटा आने का कारण भी कालिदास को ज्ञात था—

हरस्तु किञ्चित्प्रवलिप्तुधैर्य्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।

ध्रुव प्रदेश में दीर्घकाल तक रहने वाले प्रभात का भी उन्हें ज्ञान था—

मेरोरूपान्तेष्विव वर्तमानमन्दोन्य संसक्तमहस्त्रिणयम्।

सूर्य की उष्णता से पानी भाप बनकर उड़ जाता है और वर्षा के रूप में बरसता है। 'कुमारसम्भवम्' में वर्णन है—

रवि पीत जला तपात्पयेपुनरोघेन हि युज्यते नदी।

'रघुवंश' में पुनः लिखते हैं—

सहस्त्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रसं रविः।

अर्थात् सूर्य सहस्रगुणा करके बरसाने के लिए ही रस को खींचता है।

कालिदास को चुम्बक विज्ञान का भी ज्ञान था—

अयस्कान्तेन लोहवत्।

आयुर्विज्ञान

कालिदास को आयुर्वेद तथा वैद्यक का भी ज्ञान था। 'कुमारसंभवम्' में कहा है—

तस्मिन्नुरायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहत क्रियाः।
वीर्य्यवन्त्यौषाधानीव विकारे सान्निपातके।।

'मालविकाग्निमित्रम्' में सर्पदंश-चिकित्सा के विषय में कविप्रवर कहते हैं—

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतस्यांरक्त मोक्षणम।
एतानि दष्ट मात्राणामायुध्यः प्रतिपत्तयः।।

जीवविज्ञान

कालिदास जीवविज्ञान के भी ज्ञाता थे। कोकिल के 'कुहू' रव पर संस्कृत के सभी कवि समान रूप से मुग्ध थे। प्रायः यह कहा जाता है कि 'कोयल गाती है' किन्तु अकेले कालिदास ने यह तथ्य बताया है कि कोयल नहीं गाती कोकिल गाता है। 'कुहू-कुहू' का कूजन पुरुष कोकिल के कंठ से निकलता है, स्त्री कोकिल के कंठ से नहीं। नर कोकिल अपनी प्रिया को रिझाने के उद्देश्य से कुहू-कुहू गाता है।

मनोविज्ञान

कविकुल भाल-कुंकुम कालिदास मन की अनन्त सृष्टि के अद्भुत चितेरे थे। मन का भावानुभाव संचारीभाव उनकी रत्नप्रसू लेखनी से अछूता नहीं रहा। अभी बीसवीं शती में प्रसिद्ध जर्मन मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड ने जिस अवचेतन मन का सिद्धान्त खोजा है, कालिदास 20 शती पहले ही उससे परिचित थे, दुष्यन्त का अभिशप्त अचेतन जब शकुन्तला को भूल चुका था तब सहसा उसके कानों में एक गीत की भनक पड़ी जिसे रानी हंसपादिका गा रही थी। उसमें भ्रमर के प्रति यह उपालम्भ था कि 'कमलिनी के प्रति पिछले अनुराग को भूलकर तुम आज आम की रसभरी मंजरी से लिपटे हुए हो।'

गीत सुनकर दुष्यन्त के हृदय में सहसा एक अनजानी-सी उदासी छा जाती है। वह कह उठता है—

रम्यणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान्।
पर्युत्सकी भवति यत्सुखितोऽपि जतुः।
तच्चेतमा स्मरति नूनमबोध पूर्ण।
भावास्थिराणि जननांतर सौहृदानि।।

अर्थात्, मधुर शब्द सुनकर सुखीजन भी जो बरबस उत्सुक हो जाते हैं, उससे ऐसा लगता है कि ऐसे क्षणों में उनकी चेतना में किसी अज्ञात और जन्मान्तरीण प्रेम की स्मृति जाग उठती है जो पहले से ही उनकी भावात्मक अवचेतना में स्थिर थी।

वायुसंचरण विज्ञान

कालिदास के समय में वायुयान तो नहीं थे पर कभी भगवान् राम की विमान यात्रा तथा कभी मेघ की गगन यात्रा के बहाने कालिदास अपने पाठक को वायुसंचरण का भी आनन्द प्रदान करते हैं। सबसे अद्भुत बात यह है कि जिस

गगन पथ रेखा से होकर राम और सीता विमान यात्रा कर रहे होंगे यदि ठीक उसी मार्ग से हो कर आज कोई कला प्रेमी वायु यात्रा करे तो उन जल-थल के बदलते हुए दृश्यों की वैसी ही तस्वीर उसे देखने को मिलेगी जिसका वर्णन कालिदास ने बिना वायुयान में बैठे ही कर दिया था।

अर्थ विज्ञान

कवि-मनीषी कालिदास अर्थविज्ञानवेत्ता भी थे। उन्होंने 'निक्षेप' का वर्णन किया है। यदि किसी के पास अमानत के रूप में कुछ वस्तु या धन रखा जाए तो वह 'निक्षेप' कहलाता था। 'न्यास' का अर्थ भी धन जमा करना था। 'नीवी' का अर्थ सब खर्च निकालकर शेष बचत है। प्राचीन काल में बैंकों जैसा व्यवसाय भी चलता था।

कृषि विज्ञान

कालिदास ने कृषि का भी अच्छा ज्ञान प्रदर्शित किया था। अधिकांश जनता कृषि पर ही जीती थी। यव, धान, ईक्ष, तिल, गोधूम तथा केशर की शस्य होती थी। धान के भी कई प्रकारों का वर्णन है, जैसे—शाली, कलमा तथा निवारः। गन्ने से 'प्रचुर गुड़ विकारः' बनते थे। ईक्ष के खेत में काम करने वाली कृषक बालाएं महाराज रघु की कीर्ति के गीत गा रही हैं। काश्मीर तथा वक्षु की वादी पीले केशर की सुगन्ध भरी शस्य से झूम रही है। यह है कालिदास द्वारा प्रस्तुत किये गये वे अमर चित्र जिनके पुनः दर्शन करने के लिए प्रत्येक भारतीय के नेत्र सहस्राब्दियों से तरस रहे हैं।

29 नवम्बर 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' मासिक विशेषांक में प्रकाशित

राष्ट्र की सुरक्षा केवल तितिक्षु बन कर सम्भव नहीं। तितिक्षा किसी व्यक्ति विशेष का धर्म हो सकती है, राष्ट्र धर्म नहीं।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

श्रीकृष्ण चन्द्र-चन्द्रिका का तृषित चकोर कविवर रहीम

एक महापुरुष का जन्म मानवता के भाग्याकाश में चमकने वाली उज्ज्वलतम विद्युल्लेखा है। मानवता के इतिहास की महानतम घटना है, विश्व इतिहास का पवित्रतम पर्व है। आज का शुभ दिवस एक महान् आत्मा के पुण्य स्मरण के लिए पवित्र है। आज से पूरे 402 वर्ष पूर्व आज के ही दिन महान् कृष्ण भक्त कवि खानखाना अब्दुल रहीम, सुप्रसिद्ध कविवर का जन्म हुआ।

उत्तर भारत की प्रसिद्ध उक्ति है—

जननी जने तो भक्त जन, या दाता या शूर।
नहीं तो जननी बांझ रह, काहे गंवावे नूर।।

उक्त पद्य में यह भावना दी गई है कि एक सच्ची माता को या तो एक भक्त पुत्र उत्पन्न करना चाहिए या एक दानवीर बालक या एक शूरवीर सन्तान। अन्यथा माँ का बांझ रहना ही अच्छा, व्यर्थ ही अपना नूर गंवाने से क्या लाभ है?

यह एक अद्‌भुत संयोग का विषय है कि कविवर रहीम भक्त, दाता और शूरवीर एक साथ तीनों ही थे। ऐसे विलक्षण महापुरुष संसार में विरले ही मिलते हैं।

महान् भक्त—दिल्ली से भगवान् कृष्ण की जन्म भूमि मथुरा की ओर जाते हुए नई दिल्ली से निकलते ही मथुरा रोड पर ही इस महान् कृष्ण भक्त की समाधि बनी हुई है। श्रीकृष्ण के चरणों में प्राण प्रसून चढ़ाने के लिए जाने वाले भक्तों को मार्ग में इस महान् कृष्ण भक्त की समाधि पर भी दो-एक भाव पुष्प चढ़ाना योग्य है। इस महान् भक्त का जन्म तो लाहौर में अकबर के संरक्षक बैरमखां के गृह में हुआ किन्तु बैरमखां की मृत्यु के पश्चात् अकबर के सेनापति तथा उसकी राजसभा के नवरत्न मण्डल के उज्ज्वल रत्न बनने पर आप आगरे में रहे जहाँ पुण्यश्लोक गोस्वामी तुलसीदासजी से आपकी स्नेह-मैत्री बढ़ी किन्तु गोस्वामी तुलसीदासजी के साकेतवास के दो वर्ष पश्चात् ही दिल्ली में रहीम ने भी इस असार संसार

को त्याग दिया। तभी से उनकी समाधि दिल्ली की भूमि को पवित्र कर रही है। रहीमजी की रामभक्ति भी स्तुत्य है—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश।

एक हाथी को स्नान के पश्चात् अपने ऊपर पुनः धूलि उड़ाते देख कर रहीम का विस्मय अध्यात्मपरक हो गया। शायद हाथी भी भगवान् राम की चरण धूलि को ढूंढ़ रहा है।

धूर धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज।।

गंगा मैया से कोई धन मांगता है कोई जन मांगता, कोई पुत्र-परिवार मांगता है, पर रहीम की मांग निराली है—

अच्युत चरण तरंगिणी, शिव सिर मालती माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव भाल।।

राम और कृष्ण में कोई अन्तर तो है ही नहीं पर रहीम के इष्टदेव तो आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज ही थे।

जित रहीम चित अपनो, कीन्हों चतुर चकोर।
निशि वासर लागैं रहें, कृष्ण चन्द्र की ओर।

रहीम का चित-चकोर जिस कृष्णचन्द्र के दर्शन के लिए तृषित था, उसके नयन चातक भी उसी घनश्याम के लिए तरसते थे—

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आय पथिक फिरि जाए।।

रहीम ने अपने प्राण प्यारे मनमोहन की स्तुति में संस्कृत के सुन्दर सुस्वर गीत गाए हैं—

रत्नाकरस्तव गृहं, गृहिणी च पद्मा, किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
आभीर वामनयनाहृत मानसाय, दत्तं मनो, यदुपते कृपया गृहाण।।

अर्थात्, हे जगदीश्वर! आप क्षीरसागर रूपी रत्नों के भण्डार (रत्नाकर) में रहते हैं, सारे संसार की सुख-समृद्धि, धन धान्य की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी आपकी गृहिणी हैं। हे सृष्टि के स्वामी! मैं आपको क्या भेंट करूं? हाँ, आपके पास सबकुछ है किन्तु आपका मन व्रज की भोली-भाली पवित्रमना गोप-बालाओं ने चुरा लिया है। अतः हे भगवान्! मैं आप को अपना मन ही भेंट करता हूँ। हे यदुपते! कृपया इसे स्वीकार कीजिएगा, ठुकराइएगा मत।

एक अन्य पद्य में भक्त रहीम की मुक्ति के लिए प्रस्तुत की गई युक्ति, सारे भक्ति साहित्य में बेजोड़ है—

आनीता नटवन्मया तब पुरः, श्रीकृष्ण या भूमिका,
व्योमाकाशखखाम्बराब्धिवसवर, तब प्रीतये अद्यावधि।
प्रीतो यद्यसिः ताः कर्मक्ष्य भगवान्, तद वांछित देहि में,
नो चेद ब्रूहि कदापि मानय, पुनर्मामीहशीं भूमिकाम्।

अर्थात्, हे श्रीकृष्ण, हे नटनागर! मैंने आजतक आप की प्रीति के लिए आप के दरबार में बहुरुपिया बनकर 84 लाख योनियों में 84 लाख रूप बना कर नाच किये हैं। यदि आप उनमें से एक को भी देख कर प्रसन्न हुए हैं तो मेरी मन-वांछित मुक्ति मुझे दे ही दो और यदि आपको एक भी नाच पसन्द नहीं आया तो स्वयं अपने मुंह से कह दीजिएगा कि 'आगे से मेरे दरबार में ऐसे रूप बना कर कभी मत आया करो' ताकि मैं तब भी आवागमन के चक्र से छूट जाऊँ।

रहीमजी की अध्यात्म दृष्टि भी बहुत ऊँची थी। भौतिक संसार के भौतिक विषयों की वह उलटी (वमन) से उपमा देते हैं जिसे कूकर सूकर आनन्द से खाते हैं—

जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात।।

संगति के प्रभाव को भी वे बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते थे—

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसो ही फल दीन।।

इस संसार रूपी पंकिल पारावार में रहते हुए भी मानव को पंकज के समान निर्लिप्त रहना चाहिए—

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहहुं जाई।
जल में जो छाया परे, काया भीजत नाहीं।।

अनोखा दानवीर—सन्त कवि रहीम दान में दूसरे कर्ण के तुल्य माने जाते थे। उनकी घोषणा है—

तब ही लौं जीवो भलो, दीवो होय न धीम।
जग में रहि बो, कुंचित गति, उंचित न होय रहीम।।

कहा जाता है कि गंग कवि को उनके एक कवित्त पर रहीमजी ने 36 लाख मुहरें दान में दे दीं, पर दान देते हुए उनकी आंखें नीची ही थीं। गंग कवि ने प्रश्न किया—

सीखे कहां जनाब जू, ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचो उठे, त्यों त्यों नीचे नैन।।

रहीमजी का उत्तर स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है—

देनहार कोई और है, भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पै करैं, तातें नीचे नैन।।

एक बार गोस्वामी तुलसीदासजी के पास एक निर्धन ब्राह्मण आया। वह अपनी युवती लड़की के विवाह के लिए कुछ धन की सहायता चाहता था। गोस्वामीजी ने उसे रहीम के पास भेजा तथा एक पंक्ति लिख दी—

सुरतिय नरतिय नागतिय, यही मांगत सब कोय।

भाव यह था कि सभी जाति की स्त्रियाँ चाहती हैं कि उनकी पुत्री किसी अच्छे वर को प्राप्त हो। रहीमजी ने उस ब्राह्मण की सहायता तो की ही पर अपने हृदय की उदारता में यह लिख दिया—

सुरतिय, नरतिय नागतिय, यही मांगत सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय।।

शूर शिरोमणि—रहीम अकबर के सेनाध्यक्ष रहे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहांगीर के भी सेनानायक थे। वे महान् योद्धा थे। पर समर भूमि की शूरता से भी बढ़ कर वे हृदय की वीरता के स्वामी थे। वे स्वाधीन चेतःमहापुरुष अकबर के सेनापति होते हुए भी अकबर के सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी महाराणा प्रताप को लिखते हैं—

धर्म रहहि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरे, रखियो निहचो राण।।

हे राणा प्रताप! धर्म रहेगा तो धरा भी रहेगी, यह खुरसाण (मुगल) तो नष्ट हो जाने वाला है इसलिए अमर विश्वंभर भगवान् महादेव पर अपना दृढ़ निश्चय रख कर संघर्ष करते जाओ? आज प्रश्न उठता है कि भारत में मुसलमानों की समस्या का क्या हल है? क्या रहीम ने मार्गदर्शन नहीं किया? यदि भारत के मुसलमान, मुसलमान रहते हुए भी रहीम तथा रसखान के समान भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारतमाता खण्डित हो पाती? यदि आज पुनः रहीम की पावन स्मृति पर हम पथभ्रष्ट मानवों को कर्तव्य के आलोक पथ पर लाने में समर्थ हों तो खण्डित देश के पुनः अखण्ड होने की उज्ज्वल आशा भारत के भाग्य क्षितिज पर मुस्कराने लगे।

जय रहीम, जय कृष्णचन्द्र, जय भारत देश।।

17 दिसम्बर 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

'वन्दे मातरम्' के अमरगायक : ऋषि बंकिमचंद्र

'अनेक लोग, भारत के गत वैभव का स्मरण कर शोक से कहते हैं कि प्राचीनकाल के ऋषि हमारे अतीत के ही चमत्कार थे, जो इस युग के पतित मानवों द्वारा पुनः प्रदर्शित नहीं किए जा सकते। यह एक भूल है, महान् भूल है, अक्षम्य भूल है। हमारा देश शाश्वत है, राष्ट्र शाश्वत है तथा धर्म शाश्वत है, जिसकी शक्ति, महत्ता और पवित्रता कुछ समय के लिए मेघाच्छादित भले ही हो जाए किन्तु पूर्णतया नष्ट कभी नहीं हो सकती। वीर, ऋषि और संत भारत की धरती के स्वाभाविक वरदान हैं और कोई भी ऐसा युग नहीं आया जब वे पैदा न हुए हों। हमने अन्त में ऐसा समझ लिया है कि उत्तरकाल के ऋषियों में हमें उस महामानव का नाम अवश्य परिगणित करना चाहिए, जिसने हमारे राष्ट्र को पुनर्जीवित करने वाला ऐसा मन्त्र दिया, जो अभिनव भारत का निर्माण कर रहा है—वह संजीवन मन्त्र है—'वन्दे मातरम्'। वेदवाणी वंदित योगीराज अरविन्द घोष की यह हृदयहारी भावांजलि जिस महान् विभूति के चरणों पर चढ़ाई गई है, वे बांग्ला साहित्य के सूर्य तथा 'वन्दे मातरम्' के अमर गायक बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय सचमुच भारत के पुण्यश्लोक ऋषियों की परम्पराओं में आने वाले एक महान् ऋषि ही थे, जिनका कार्य लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता के भटके हुए कदमों को पुनः अभ्युदय एवं निःश्रेयस के आलोक पथ पर लाना है।

आज से पूरे एक सौ इक्कीस वर्ष पूर्व 29 जून 1838 के दिन बंग-साहित्य के मणिमुकुट बंकिम बाबू का जन्म उस बंगदेश में हुआ जिसने पिछली एक शताब्दी में अनेकानेक महापुरुषों को जन्म देकर समूचे देश के सांस्कृतिक व राजनीतिक नेतृत्व का गौरव प्राप्त कर लिया था। जागृति के अग्रदूत बंगाल की प्रशस्ति में महाराष्ट्र भूषण श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इतना तक कह दिया, 'जिस बात पर बंगाल आज विचार करता है वह शेष भारत के मस्तिष्क में कल आती है।'

देशभक्ति : बंकिम बाबू जो जीवन के पूर्वकाल में एकमात्र कवि, साहित्यिक और शैलीस्रष्टा थे, जीवन के उत्तर काल में वे एक ऋषि और राष्ट्र निर्माता थे। बंकिम बाबू ने युग की मांग को समझ लिया और अपनी विलक्षण दृष्टि से उस अलौकिक द्रष्टा ने राष्ट्र के भविष्य के दर्शन कर लिए थे। बंकिम ने

अपनी प्रज्ञा के ज्वलन्त स्पर्श से ही देश के दुःख, दैन्य, दास्य को समूल भस्म करने का ध्रुव संकल्प किया। अपने जगत् प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' के कथानक के ताने-बाने द्वारा इस महान् ऋषि ने भारतमाता की कोटि-कोटि सन्तानों के सम्मुख मुक्ति का आलोक-पथ प्रशस्त किया। गुलामी के घोर अत्याचार का मुकाबला दुर्धर्ष नैतिक बल द्वारा ही किया जा सकता है। उसके लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता है। प्रथम तत्त्व है—त्याग, यज्ञ और बलिदान। बंकिम बाबू ने हमें दृष्टि दी कि मातृभूमि की रक्षा के लिए, सर्वस्व समर्पण के लिए सिद्ध रहना चाहिए। भवानन्द के चरित्र में उन्होंने हमें एक राजनैतिक वैरागी की बड़ी भावप्रेरक दृष्टि दी। नैतिक शक्ति के लिए दूसरा तत्त्व है—आत्मानुशासन तथा संगठन। अपने उपन्यास 'देवी चौधरानी' में उन्होंने हमारे सम्मुख बंगाल की एक ऐसी महान् वीरांगना का रोमांचकारी चरित्र दिया है जिसने पहले अंग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज के काल में बंगाल को मुक्त करने के लिए कुछ डाकुओं के दल को संगठित कर के अंग्रेजों को धूल चटा दी। आनन्दमठ में भी संयम एवं संगठन पर बल दिया गया है। शक्ति का तीसरा तत्त्व है देशभक्ति के कार्य में धर्म भावना का समावेश। बंकिम बाबू ने हमें राष्ट्र सेवा के धर्म की कल्पना दी तथा श्री अरविंद ने हमें स्वातंत्र्य के अवतार की सुन्दर दृष्टि प्रदान की।

वन्दे मातरम्—बंगाल शक्ति का पुजारी है। ऋषि बंकिम ने मातृ पूजा की इसी स्वभाव सुलभ भावना का परिष्कार एवं राष्ट्रीय संस्कार करके भारत के कोटि-कोटि नर-नारी को वह दृष्टि प्रदान की, जिसके द्वारा वे अपनी सच्ची माँ (भारतमाता) को पहचान सकें। आनन्द-मठ में आनन्द-मग्न संन्यासी भवानन्द के मधुर-कण्ठ से जो स्वर लहरी 'सुजलां सुफलां मलयजशीतलां' भारतमाता का अभिनन्दन करती हुई निःसृत हो उठी, उस ने पिछली एक शती में इस पुण्य-भूमि भारत के धरती और आकाश को गुंजारित किया है। बंकिम बाबू की हृदय-वीणा में झंकृत यह मातृ-स्तवन भारतमाता की कोटि-कोटि सन्तानों के हृदयों को तरंगित करता हुआ हमारा मुक्तिमन्त्र, हमारा जयगान तथा हमारा ओजस्वी राष्ट्रगीत बन गया है—

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्।।
शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित-द्रुमदल शोभनीम्,
सुखदां, वरदां मातरम्।।
।।वन्दे मातरम्।।

ऋषि बंकिम ने माँ को अपना सर्वस्व मान कर भाव-विह्वल हृदय से माँ को पुकार कर कहा—

तुमी विद्या, तुमी धर्म
तुमी हरि तुमी मर्म,
त्वं ही प्राणाः शरीरे।
बाहु ते तुमी मां शक्ति,
हृदये तुमी मां भक्ति
तोमारई प्रतिमा गढ़ि मंदिरे-मंदिरे

जिस माँ की पावन प्रतिमा कोटि-कोटि पुत्रों के हृदय-मन्दिर में मढ़ी हुई है, वहीं माँ तो सच्ची दुर्गामाता है।

उसी माँ के स्तवन में बंकिम का हृदय गीत के माध्यम से नृत्य कर उठा—

त्वं हि दुर्गा दशप्रहर धारिणीम्,
कमला कमल दल विहारिणी
वाणी विद्या दायिनीं नमामि त्वां,
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां मातरम्। वन्दे मातरम्।।

अपने एक लेख 'मेरा दुर्गात्सव' में क्रान्तदर्शी कवि बंकिम लिखते हैं—मैंने फिर मग्न होकर उस काल के स्रोत में दशभुजा, अनेक शस्त्र धारिणी, शत्रु मर्दिनी, वीरेन्द्र पृष्ठ विहारिणी, भगवती भारतमाता की सुवर्णमयीं मूर्ति देखी। उस विश्व मोहिनी मूर्ति को देखकर माँ का दुलारा बंकिम पुकार उठा-आओ मैया, नवीन रंग से रंगी हुई, नवीन बल धारण किए हुए नवीन दर्प से भरी हुई नवीन स्वप्न देखती मैया। आओ, घर में आओ, हम तुम्हारी 32 करोड़ सन्तान एक स्थान में एक साथ 64 करोड़ हाथ जोड़कर तुम्हारे श्रीचरणों की आराधना करेंगे। 32 करोड़ कंठ से आकाश मंडल को कम्पाते हुए कहेंगे—मैया जननी अम्बिके। धात्रि धारित्रि धनधान्य धारिणी नगाङ्क शोभिनी! नगेन्द्र बालिके! शरत्सुन्दरि चारुपूर्ण चन्द्रभालिके।' हम इन 32 करोड़ सिरों को इन चरणों के ऊपर गिरावेंगे, सब मिलकर 32 करोड़ कंठों से तुम्हारा नाम लेकर हुँकार करेंगे, 32 करोड़ शरीर तुमको अर्पण कर देंगे। न हो सकेगा तो 64 करोड़ आंखों से तुम्हारे लिए रोएंगे। आओ मैया घर में आओ जिस के 32 करोड़ बच्चे हैं उसे चिंता काहे की?

समाज दर्शन—बंकिम बाबू की रत्न-प्रसू लेखनी में समाज के संस्कार हैं। नारी-धर्म पालनार्थ मक्खी उड़ानी ही है। हाय! कौन पापिष्ट नराधम इस परम

रमणीय धर्म का लोप करने जा रहे हैं, हे आकाश! उनके सिर पर गिराने के लिए क्या तुम्हारे पास वज्र नहीं है?'

हास्य-व्यंग्य—महामनीषी बंकिम के लेख विद्वत्ता के अतिरिक्त हास्य और व्यंग्य का मधुतिक्त दंश भी लिए हुए हैं। एक भंवरा भारतवासी को व्यंग्य से कहता है—मैं एक साधारण कीड़ा हूँ। मैं भी केवल भनभन नहीं करता। हम लोग मधु संग्रह करते हैं, और जत्था बांधते हैं। तुम लोग न मधु संग्रह करना जानते हो और न जत्था बांधना जानते हो, जानते हो केवल भनभन करना। तुमको कोई काम करने का सलीका नहीं। मधु संग्रह करना सीखो, मधुकर की तरह एका करके जत्था जोड़ना सीखो, तुम्हारी जीभ और कलम से तो हमारा डंक ही अच्छा है। तुम्हारे वाक्यों से या कलम से कोई नहीं डरता, परन्तु देखो, हमारे डंक से सब लोग घबराते हैं!

धर्म रक्षा—बंकिम बाबू अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'राजसिंह' के उपसंहार में लिखते हैं—अन्यान्य गुणों के साथ जिसमें धर्म है—वही श्रेष्ठ है। अन्यान्य गुणों के होते हुए भी जिसमें धर्म नहीं, हिन्दू हो चाहे मुसलमान—वही निकृष्ट है। औरंगजेब धर्मशून्य था, इसलिए उसके समय में मुगल साम्राज्य का अधःपतन आरम्भ हुआ। राजसिंह धार्मिक थे, इसीलिए ये छोटे राज्य के स्वामी होकर भी मुगल बादशाह को अपमानित तथा परास्त कर सके।

बंग साहित्य-सम्राट, राष्ट्रोद्धारक, धर्मरक्षक, समाज संस्कारक, देशभक्त, साहित्यसेवी, वन्दे मातरम् जैसे शाश्वत राष्ट्रगीत के शाश्वत गायक, ऋषि बंकिम चन्द्र के चरणों में उनके जन्म जयन्ती पर्व पर हमारी कोटि-कोटि श्रद्धा प्रसूनांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

7 जून 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

वंदेमातरम गीत में हम भगवद्गीता के कर्मयोग का मधुर संगीतमय चित्रण पाते हैं। इस गान से हमें एक सुन्दर संकल्पना एवं संदेश मिलता है कि भारत माता का भाल कभी विदेशी क्रूर शक्ति के सम्मुख नहीं झुकेगा और भारत एक समृद्ध व शक्तिशाली राष्ट्र बनेगा।

—प्रो. ओबराय

बंग साहित्य के प्राण संचारक : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

लीलामय प्रभु के इस अद्भुत रंगमंच पर एक से एक महत्ततम पात्र आया ही करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान् के श्रीमुख से उच्चरित यह शब्द अक्षरशः सत्य है—

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 4/7, गीता

जब-जब धर्म का ह्रास होता है और आसुरी शक्तियों के बढ़ जाने से धर्म का वास्तविक स्वरूप तिरोहित हो जाता है तब-तब भगवान् कृष्ण ही महापुरुषों के लौकिक शरीर में अवतार लेकर धर्म की रक्षा व देश का उद्धार करते हैं। स्वयं आनन्दकन्द भगवान् कृष्णजी ही कभी गुरु नानकदेवजी द्वारा धर्म के बाह्य आडम्बरों की व्यर्थता बता ईश्वर का सच्चा स्वरूप जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं, कभी गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंहजी व वीर बंदा बैरागी के रूप में धर्म व राष्ट्र की रक्षा के लिए बलिदान का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कभी कवीन्द्र-रवीन्द्र के रूप में उस दिव्य अलौकिक अपार्थिव प्रियतम की व्यापकता इस विश्व के कण-कण व पार्थिव देह में बता सान्त में अनन्त की सत्यता प्रमाणित करते हैं और कभी स्वामी विवेकानन्द, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय एवं बालगंगाधर तिलक के रूप में राष्ट्र की डूबती नैया को पार लगाते हैं। रत्नप्रसू-बंगभूमि में जन्म लेने वाले बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय भी इसी परिपाटी के अन्तर्गत आते हैं।

बांग्ला-साहित्य के सूर्य, प्रखर प्रतिभाशाली, वन्दे मातरम् के अमर गायक, महान् दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और समाजशास्त्रज्ञ बंकिमचन्द्र ने न केवल बांग्ला साहित्य को अपनी अद्भुत देन द्वारा सजाया-संवारा वरन् उन्होंने महापुरुषों की परिपाटी के सारे नियमों का अनुगमन किया और सारे भारत की स्तुति प्राप्त कर अमर यश के भागी बने। बंकिम बाबू अद्भुत निबन्धकार थे। इनके निबन्ध पुराने होकर भी चिरनवीन हैं। इन्होंने राजनीति संबंधी, धर्म संबंधी और सांख्य दर्शन पर निबंध लिखे। भारत की स्वाधीनता के लिए बंकिम का हृदय आन्दोलित

था अतः इन्होंने 'भारत कलंक', 'भारत की स्वाधीनता और पराधीनता' नामक निबन्ध लिखे। स्वयं बंकिम बाबू मां के अनन्य भक्त होने के कारण, धर्म के प्रति भी इनके विचार बहुत उच्च थे। अतः धर्मप्रेमियों के लिए इन्होंने 'धर्म और साहित्य', 'ज्ञान', 'मनुष्य क्या है' और 'चित्त की शुद्धि' आदि निबन्ध लिख बांग्ला साहित्य को गौरवान्वित किया। साहित्य प्रेमियों के लिए इन्होंने 'प्रीति-काव्य', 'प्रकृत और अतिप्रकृत', 'आर्य जाति का सूक्ष्म शिल्प' आदि निबन्ध लिखे। बंकिम बाबू के प्रत्येक निबंध में उनकी विनोदप्रियता की छटा दिखाई देती है। यह बात सर्वप्रमाणित है कि जो लोग असाधारण प्रतिभा लेकर इस भूतल पर आते हैं, उनकी दृष्टि अवश्य ही अपने समाज पर पड़ती है। जहां कहीं समाज में कुछ बुराइयां, हानिकारक प्रवृत्तियों की प्रबलता या अधःपतन का कारण देखते हैं, वे उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन बुरे को बुरा कहने से वह सुधरेगा नहीं उलटा बिगड़ेगा। ऐसी अवस्था में महापुरुष असाधारण शक्ति का प्रयोग करते हैं और अप्रत्यक्ष ढंग से समस्या को सुलझाते हैं। बंकिम बाबू ने यही रीति अपनाई। यद्यपि उन्होंने कई उत्कट देशभक्ति, हार्दिक उच्छवास और मर्मभेदी हृदय के भाव भरे हुए निबंध लिखे हैं लेकिन समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए इन्होंने जो निबंध लिखे हैं वह ऊपर से तो हास्यरस के लेख कहे जा सकते हैं पर भीतर गूढ़ व्यंग्य और शिक्षा है। इस ढंग के निबन्ध लेखक प्रायः बहुत कम होते हैं। पाश्चात्य विद्वानों में डिकेंस व मोलियर ही बंकिम बाबू के स्तर के हैं और हिन्दी, मराठी और गुजराती में तो यह उच्च स्थान बंकिम बाबू को ही प्राप्त है। ऐसे लेख लिखना कोई साधारण काम नहीं है। ऐसे लेख लिखने के लिए चाहिए समाज की भीतरी तह तक पहुँचने वाली सूक्ष्मदृष्टि, विचारशक्ति और अलौकिक प्रतिभा। बंकिम बाबू में यह गुण तो ईश्वर प्रदत्त थे। इनके निबंधों में काव्य के सभी अंग मौजूद हैं। इनमें अलौकिक प्रतिभा, कल्पना, चमत्कार, रस और शिक्षा है। इसीलिए इनके निबंधों को गद्यकाव्य कहा जाता है। इनमें कवि के कौशल, कल्पना और लिखने के ढंग को देखकर सहृदय पुरुष को वही आनन्द आता है जो एक उच्च श्रेणी की कविता पढ़ने से मिल सकता है।

उपन्यासकार के रूप में भी बंकिम बाबू बहुत उच्च कोटि के उपन्यासकार हैं। बांग्ला साहित्य के सम्पूर्ण उपन्यास लेखकों में शरतचन्द्र के अतिरिक्त कोई भी इनके स्तर तक नहीं पहुँच पाया। बंकिमचन्द्र का 'आनन्दमठ' विश्व का सबसे अधिक प्रसिद्ध व पाठ्य उपन्यास है। इसका हिन्दी व अन्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है जो कि अनुवादित रूप में भी मूल का आनन्द प्रदान करता है। 'आनन्दमठ' की विचारधारा व चिन्तन ने भारत की असंख्य पीढ़ियों की विचारधारा व चिन्तन पर अपनी अमिट छाप डाल दी है। बंकिमचन्द्र ने अपनी विद्वत्ता व दूरदर्शिता से

'आनन्दमठ' में भारत को स्वतंत्र भारत की दिव्य झांकी दिखलाई। बंकिमचन्द्र की उत्कट देशभक्ति ने उनके नाम को सदा-सदा के लिए अमर बना दिया है। बंकिम बाबू की भारत को महत्तम भेंट 'वन्दे मातरम्' है। मां के प्रति उत्कट प्रेम के परिणामतः बंकिमचन्द्र के हिल्लोलित हृदय के गीत 'वन्दे मातरम्' ने भावानन्द की संगीतमय वाणी से अभिव्यक्त हो करोड़ों भारतीयों के हृदय पर जादू किया है और भारत के अणु-अणु को स्वतंत्रता का दीवाना बना दिया। 'वंदे मातरम्' प्रायः सभी क्रांतिकारियों के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति का, स्वातंत्र्य का मंत्र रहा है। लाला लाजपतराय एवं सर अरविन्द घोष तो इससे इतने अधिक प्रभावित हुए कि दोनों ने 'वन्दे मातरम्' नाम का समाचार पत्र प्रारम्भ किया। भारतीय क्रान्ति के पिता लोकमान्य तिलक को भी इस मंत्र ने अत्यधिक प्रभावित किया।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्यपूर्ण और वक्रोक्तिपूर्ण पुस्तकों का अभाव है लेकिन बंग साहित्य में इसके सबसे बड़े लेखक बंकिमचन्द्र हैं। बंकिम बाबू अपने समाज की त्रुटियों को न देख सके। अतः उन्होंने उनको कुनैन की गोली देना ठीक न समझ उसे शक्कर मिश्रित कुनैन की गोली दी। जो ऊपर से तो मीठी किन्तु भीतर से अपना प्रभाव करने वाली थी। बंकिम बाबू के कई लेख इस ढंग के हैं जो ऊपर से तो हास्यरस का चोगा पहने हैं किन्तु, भीतर से प्रभावकारी। 'चौबेजी का चिट्ठा' बंकिमचन्द्र का इस ढंग का संग्रह है। इसमें संग्रहित लेखों को पाठक पढ़ने तो बड़ी तन्मयता से बैठता है, क्योंकि रोचकता बंकिम बाबू के साहित्य का अविभाज्य अंग है लेकिन अनायास ही पाठक को अपनी व अपने समाज की त्रुटियों का आभास हो जाता है और वह अपना सुधार करता है।

बंकिमचन्द्र का बांग्ला भाषा के प्रति अनन्य प्रेम तो एक घटना से ही स्पष्ट हो जाता है। उस समय के प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् रमेशचन्द्र दत्त की योग्यता की प्रसिद्धि न केवल भारत में अपितु विलायत तक थी। रमेशचन्द्र जो कुछ लिखते थे अंग्रेजी में। संभवतः बंगाली या हिन्दी में लिखना अपना अपमान समझते थे। एक दिन बंकिम बाबू ने रमेशचन्द्र से कहा—'आप अंग्रेजी में बहुत कुछ लिखा करते हैं, मैं आपसे मातृभाषा में भी कुछ लिखते रहने के लिए अनुरोध करता हूं।' रमेश बाबू ने उत्तर दिया—'मुझे खेद है कि मातृभाषा में लिखने का मुझे अभ्यास नहीं है। मैं जो कुछ सोचता-विचारता या लिखता हूं, सब अंग्रेजी में।' बंकिम बाबू ने कहा—'आपका यह कहना संतोषजनक नहीं। आप जो लिखेंगे वही सुलिखित होगा। मातृभाषा में लिखने-पढ़ने के लिए अभ्यास नहीं, योग्यता चाहिए।' परिणामतः रमेशचन्द्र ने बांग्ला में 'माधवी-कंकण', 'समाज', 'जीवन प्रभात', 'जीवन सन्ध्या' आदि ऐसे ग्रंथ लिखे जो आज भी बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

बंकिम बाबू ने अपने निवास स्थान काटालपाड़ा में 'बंगदर्शन प्रेस' स्थापित करके 'बंगदर्शन' नाम का मासिक पत्र निकालना शुरू किया। बंकिम बाबू चार भाई थे और चारों प्रतिभाशाली और साहित्यानुरागी थे। बंकिम बाबू की मित्रमण्डली में बा. दीनबन्धु मित्रा और हेमचन्द्र बैनर्जी उनके प्रधान मित्र थे जो कि बांग्ला साहित्य के बड़े नाटककार और कवि हो गए हैं। बंकिम बाबू के सम-सामयिक उत्कृष्ट लेखक 'बंग दर्शन' में लिखते थे। छह वर्ष तक पत्र का सम्पादन करने के पश्चात् बंकिमचन्द्र ने पत्र अपने भाई के सम्पादकत्व में छोड़ दिया। यद्यपि इस समय बांग्ला में अनेक अच्छे मासिक पत्र निकलते हैं तथापि उस विधि 'बंगदर्शन' की छटा किसी में भी देखने को नहीं मिलती और इन सब पत्रों का प्रचार अधिक होने पर भी बंगदर्शन के समान आदर या गौरव नहीं है।

बंकिम बाबू का जन्म 27 जून, 1838 के उस शुभ समय में हुआ जिस वर्ष बंगाल की तीन अन्य महान् विभूतियों—कैलाशचन्द्र सेन, हेमचन्द्र सेन और कृष्णदास पाल का जन्म हुआ। बंकिम बाबू उस समय हुए जिस समय हिन्दी साहित्य के पोषक और उसको गति देने वाले बाबू भारतेन्दू हरिश्चन्द्र अपनी सहृदयता, चातुरी और अनुभव से भरे निर्मल प्रतिभामयी प्रभाव से हिन्दी साहित्य का मुख उज्ज्वल कर रहे थे। उस समय बांग्ला भी हिन्दी की तरह हीन अवस्थाओं में थी। जैसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे उच्चपदाधिकारी हिन्दी से घृणा करते थे और यहां तक कि हिन्दी में बोलना-लिखना हीनता समझते थे वैसा ही उस समय बांग्ला का हाल था। लेकिन बंकिम बाबू ने उस समय साहित्यिक क्रान्ति का नेता बन बांग्ला साहित्य की त्रुटियों को दूर कर उसके खोये हुए गौरव को पुनः जाग्रत् किया और उन्होंने ऐसा अमृत सींचा कि अब वह अमर होकर न केवल बंगाल निवासियों का ही स्तुति केन्द्र है वरन् सारे भारत को गौरवमय बना रही है।

बंगदेश की इस महान् विभूति का न्याय भी हमें बाध्य करता है कि इस महान् विभूति के सम्मुख नत-मस्तक हो जाएं। बंकिमचन्द्र बर्दबान में मजिस्ट्रेट थे। एक बार एक ग्रामीण ब्राह्मण, जिस पर चोरी का अभियोग चल रहा था, उसका केस बंकिम बाबू के पास आया। बंकिम बाबू अपनी पैनी दृष्टि से जान गए कि ब्राह्मण निर्दोष है। यह शरारत पुलिस वालों की है। जान-बूझकर एक दिन के लिए न्याय का दिन स्थगित कर दिया। बड़ी दूरदर्शिता से ऐसा षड्यंत्र रचा कि सचाई पता लगा ली और ब्राह्मण को निर्दोष मुक्त कर दिया और पुलिसमैन को कड़ा दण्ड दिया।

बंकिम बाबू की प्रतिभा का जहां साहित्य सृजन में हमें महान् रूप लक्षित होता है वहां वे साथ ही साथ सक्रिय समाज सुधारक भी थे। पति-पत्नी में पारस्परिक स्नेह और पाणिग्रहण के विषय पर बंकिम बाबू के उच्च विचार हैं,

'इन्द्रिय तृप्ति या केवल पुत्रमुख देखने के लिए विवाह नहीं है। यदि विवाह-बंधन से मनुष्य के चरित्र का उत्कर्ष न हो तो विवाह की आवश्यकता नहीं है। इन्द्रियादि तो अभ्यास के वश हैं। अभ्यास से ये सर्वदा शान्त रह सकती हैं। वरन् मनुष्य जाति इन्द्रियों को वशीभूत करके चाहे पृथ्वी से लुप्त हो जाए, जगज्जननी दुर्गा भी शिव की विवाहिता हैं।' एक अन्य स्थान पर 'पति ही पत्नी का परमेश्वर है' यह समझाते हुए लिखते हैं, 'हिन्दू ऋषियों की बुद्धि इस बात को समझने में समर्थ हुई कि यद्यपि भगवान् निराकार और निस्सीम हैं पर उनका यह रूप साधारण मनुष्य के लिए अगम्य है। इसलिए एक साकार और ससीम रूप की आवश्यकता हुई, जिसकी पूजा की जा सके। पत्नी के लिए पूजा की सबसे अधिक स्वभावानुकूल वस्तु उसका पति है। इसलिए ऋषियों का यह वचन है, कि पत्नी को पति की परमेश्वर की भांति पूजा करनी चाहिए।' बंकिम चन्द्र का हृदय देश में दिनोदिन बढ़ते पतन को देख व्यथित हो उठा और वे क्षोभवश कह उठते हैं, 'गृहिणी पंखा हाथ में लिए भोजन की थाली के पास बैठी है। नारी धर्म के पालनार्थ मक्खी उड़ानी ही है। हाय! कौन पापिष्ठ नराधम इस परम रमणीय धर्म का लोप करने जा रहे हैं? जो पापिष्ठ लोग इस धर्म का लोप कर रहे हैं, हे आकाश! उनके सिर पर गिराने के लिए तेरे पास क्या वज्र नहीं है।'

बंकिमचन्द्र को श्रद्धांजलि देते हुए रवीन्द्रनाथ लिखते हैं, 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर से मिलने के लिए कोलकाता के सब तरह के विद्वान्, साहित्य प्रेमी और कलाविद् आते थे। उस समय कोलकाता ही मानो हमारे भारत का हृदय था। भारत की चिरसुप्त प्रतिभा पश्चिम के आघात से जाग्रत् हो उठी थी और अर्धोन्मीलित आँखों को मलते हुए विकास की ओर अग्रसर हो रही थी। बंकिमचन्द्र ने बंग साहित्य में प्राण संचार कर दिया था। देश का लुप्तप्राय गर्व साहित्य के क्षेत्र में अपने आपको ढूंढ़ रहा था।'

धन्य हैं विजय गीत 'वन्दे मातरम्' के अमर गायक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पारिवारिक परिचय—रवीन्द्रनाथ का कुटुम्ब बंगाल में अत्यन्त प्राचीनकाल से एक बहुत प्रतिष्ठित कुटुम्ब समझा जाता है। उस वंश में कई बड़े-बड़े साधु और महात्मा पहले भी हो चुके हैं। स्वयं रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी बंगाल के एक बहुत बड़े महात्मा थे। इनकी शांति, दया, क्षमा, धर्म, ज्ञान और परोपकार इत्यादि सद्‌गुणों के कारण ही लोगों ने इनको कलयुग के समय में भी महर्षि की पदवी दी थी।

परिस्थितियां—उनके जन्म के समय तीन आंदोलन भारत के जन मानस को आलोकित कर रहे थे....। वे तीन धाराएं थीं—ब्रह्म समाज, राष्ट्रीय आंदोलन तथा साहित्य में नवजागरण की चेतना।

कवि की प्रतिभा तो उनमें स्वाभाविक, ईश्वर की दी हुई थी। परन्तु प्रसिद्ध बंग-कवि चंडीदास, मैथिल कवि विद्यापति तथा कबीरदास, चैतन्यदेव इत्यादि साधु कवियों की कविताओं के अध्ययन का प्रभाव उन पर बहुत पड़ा। अतएव कविता के विषय में रवीन्द्र बाबू इन साधुओं को अपना गुरु स्वरूप मानते रहे।

जन्म—इनका जन्म कोलकाता में सन् 1861 में हुआ था।

वंश—रवीन्द्रनाथ का कुटुम्ब बंगाल में अत्यन्त प्राचीनकाल से एक बहुत प्रतिष्ठित कुटुम्ब समझा जाता है। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर एक धर्मात्मा व्यक्ति और महान् चिन्तक थे। वे विशेषकर परोपकार, धर्म-प्रचार और ईश्वर चिंतन में ही मगन रहा करते थे। रवीन्द्रनाथ की माता भी एक प्रतिष्ठित कुल की सुयोग्य महिला थीं। वे अत्यन्त सुशील, धर्मात्मा, पतिव्रता, सती-साध्वी देवी रूप थीं। साधु और साध्वी, पिता व माता के सद्‌गुण रवीन्द्रनाथ में बालपन से ही दिखलाई देने लगे थे। परन्तु, पूज्य माता की गोद में बहुत दिनों तक लालन-पोषण और शिक्षण प्राप्त करने का सौभाग्य रवीन्द्रनाथ को नहीं मिला। उनकी माता का देहांत उनके बचपन में ही हो गया।

शैशव—अपने बालपन के विषय में रवीन्द्रनाथ ने एक बार अपने एक अंग्रेज मित्र से कहा था—'मैं अपने बालपन की एक खास बात यह बतला सकता

हूं कि मेरा स्वभाव बहुत ही एकांतप्रिय था। मेरे पिता की भेंट मुझसे बहुत कम होती थी। परन्तु, घर में सब उनकी ऐसी धाक मानते थे कि जैसे वे प्रत्यक्ष ही हम लोगों के सामने खड़े हों। जैसे कोई कैदी किसी कोठरी में, सिपाहियों की देख-भाल में रख दिया गया हो। इसी प्रकार से मैं अपने घर में रहता था। मैं अधिकतर अपने घर में ही बैठा रहता था और मेरे आसपास के घर के नौकर-नौकरानियां ही मेरे साथी-संगी थे। हमारे कमरे के बाहर संसार में क्या हो रहा है—इसके नाना भांति के चित्र मैं अपनी कल्पना से ही अपने मन में लाया करता और उन्हीं से अपना मनोरंजन किया करता था। बस, यही मेरा लड़कपन का खेलकूद था।'

शिक्षा—रवीन्द्रनाथ की बालपन की शिक्षा स्कूल में बहुत ही कम हुई। वे लड़कपन में जिस पाठशाला में पढ़ने को जाते थे, उस पाठशाला के अध्यापकों का व्यवहार विद्यार्थियों के साथ अच्छा नहीं था। बालकों को प्यार के साथ विद्या पढ़ाने की सोच उस समय बहुत कम थी। ताड़ना और भय दिखाकर अध्यापक लोग शिष्यों को पढ़ाया करते थे। बालक रवीन्द्र के साथ अध्यापकों का ऐसा ही बर्ताव हुआ। रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि एक अध्यापक तो पाठशाला में उनको बहुत ही निर्दय मिला। वह थोड़ी-सी चूक होने पर भी रवीन्द्र को बिना टोपी के खुले सिर घंटों धूप में खड़ा रखता। अन्य विद्यार्थियों के साथ भी रवीन्द्र ने अध्यापकों का ऐसा ही क्रूर व्यवहार देखा। इसका परिणाम यह हुआ कि पाठशाला की पढ़ाई से उनका मन उचट गया। और पाठशाला से वे अनुपस्थित रहने लगे। इसके लिए वे लड़कपन में अनेक बहाने निकालने लगे। रवीन्द्रनाथ स्वयं कहते थे कि कभी-कभी तो वे अपने पैर के बूटों को पानी में डुबोकर, वैसे ही गीले बूट पहने हुए घूमा करते थे, जिससे उनको बुखार आ जाए और इसी निमित्त से पाठशाला से उनका पिंड छूटे। सच है, रवीन्द्र के समान कोमल भावनाओं के जगत् में विचरण करने वाले बालकों को स्कूल की पढ़ाई के लिए जबरदस्ती मजबूर करना कभी हितकर नहीं है। यह बात उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर के ध्यान में तुरन्त आ गई और उन्होंने बात की बात में रवीन्द्र का स्कूल छुड़वा कर घर में ही निजी शिक्षक के द्वारा उनकी पढ़ाई का प्रबंध किया।

प्रकृति प्रेम—रवीन्द्रनाथ का बालपन अधिकतर प्रकृति माता की ही गोद में व्यतीत हुआ। उनके स्वभाव में एकांतप्रियता के लक्षण पहले से ही दिखाई देने लगे थे। प्रकृति निरीक्षण का ही उन्हें बालपन में विशेष प्रेम था। जब कभी आकाश में बादलों के ऊपर बादलों को दौड़ते हुए देखते थे तब वे पागल-से हो जाते थे। बचपन में भी उन्हें कुछ ऐसा विश्वास था कि जैसे उनके आसपास कोई उनका अत्यन्त प्राणप्रिय मित्र अवश्य मौजूद है। पर उसका नाम क्या है, उसका रूप कैसा है। उसे वे प्रकट रूप से बतला नहीं सकते थे। प्रकृति पर उनका बहुत ही प्रेम था।

जिसको वे शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते थे। उसी को अपनी अत्यन्त प्राणप्रिय सखी समझते और उसमें क्षण-क्षण पर उन्हें नवीन सौन्दर्य दिखलाई देता।

काव्य स्फुरण—रवीन्द्र बाबू सत्रह-अठारह वर्ष की अवस्था में सर्वप्रथम जनता के सामने कवि रूप में प्रकट हुए। उस समय की उनकी रची हुई 'प्रभात-संगीत', 'संध्या-समीर' और 'मृत्यु का अमरत्व' इत्यादि कविताएं बहुत पसंद की गईं।

रवि के पास कवि हृदय तो था ही बस प्रेरणा और संयोग पाकर वह फूट पड़ा और वह केवल भारत का ही नहीं बल्कि विश्व का महाकवि बन गया। जब कवि का सुमधुर कंठ खुला तो लोग आश्चर्यचकित रह गए। सब इस सोच में पड़ गए कि इस महापुरुष को क्या कहा जाए—महाकवि या संगीतज्ञ। लोगों ने उन्हें गुरुदेव कहना शुरू कर दिया।

इंग्लैण्ड यात्रा (18 वर्ष) 'जॉन मोर्ले—रवीन्द्र बाबू पहले-पहल सत्रह वर्ष की अवस्था में विलायत गए और वहां पर लगभग एक वर्ष रहकर प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और राजनीतिज्ञ जॉन मोर्ले के यहां अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करते रहे। एक बार विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की भी उन्होंने कुछ चेष्टा की थी। पर उनको विश्वविख्यात महाकवि बनना था। अतएव, उस समय उनको उक्त चेष्टा में सफलता नहीं मिली।

विवाह—तेईस वर्ष की अवस्था में रवीन्द्र बाबू का विवाह हुआ। अब वे गृहस्थ थे।

जमींदारी—जब वे गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट हुए तब गांव में जाकर अपनी पैतृक जमीन-जागीर का प्रबंध करने के लिए पिता ने उनको आज्ञा दी। जमींदारी के कामों की देखरेख करने के सिलसिले में उन्हें नदियों के द्वारा बराबर यात्रा करनी पड़ती थी। इस प्रकार उन्हें नदियों का पूरा ज्ञान प्राप्त हुआ था।

गृहस्थी—पैंतीस वर्ष की अवस्था तक उनका गार्हस्थ्य जीवन बहुत ही सुख और आनन्द के साथ व्यतीत हुआ।

ग्राम्य जीवन—गांव में रहते-रहते रवीन्द्र बाबू का मन वहां रम गया। गांव में रहने के कारण उनको सर्वसाधारण लोगों और किसानों के आचरण, व्यवहार और उनकी परिस्थिति को जानने का बहुत अच्छा अवसर मिला। वहां उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से यह अनुभव किया कि मनुष्य मात्र के हृदय में आनन्द और दु:ख तथा वासना और भावना का परस्पर मिश्रण कैसे होता है।

दु:ख का दंश—पैंतीस वर्ष की अवस्था के बाद उनके जीवन में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिन्होंने उनके उस नैसर्गिक प्रेममय जीवन में एक विचित्र क्रांति

अर्थात् परिवर्तन कर दिया। उनका जीवन स्वाभाविक ही भगवद्भक्ति और साधुत्व की ओर अब विशेष रूप से अग्रसर हुआ। अर्थात् पैंतीस वर्ष की अवस्था में पहले उनकी प्रिय पत्नी का देहांत हुआ। फिर कुछ महीने बाद उनकी पुत्री क्षय रोग से स्वर्गवासिनी हुई। इस प्रकार एक के बाद एक ऐसी शोकजनक घटनाएं घटीं जिन्होंने उनके जीवन को और भी ऊँचा करके उनको बिलकुल साधु बना दिया।

वियोग शोक, मृत्यु दर्शन—रवीन्द्र बाबू ने स्वयं एक बार अपने मित्र ऐंड्र्यूज साहब से कहा था—'यह मृत्यु मानो मेरे लिए ईश्वर का एक बड़ा भारी वरदान-सी मालूम हुई। मैंने पूर्णतः समझ लिया कि परमात्मा ने मेरे ऊपर पूर्ण कृपा की। मेरा कुछ भी नष्ट नहीं हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि मिट्टी का एक कण भी, चाहे वह हमको नष्ट होता हुआ-सा दिखलाई दे—पर, वास्तव में नष्ट नहीं हो सकता। मैं परमात्मा पर सारा भार डालकर बिलकुल निश्चिंत हो गया। यही नहीं, बल्कि मुझे विश्वास हो गया कि मेरा जीवन अब बिलकुल सार्थक हुआ। मृत्यु क्या चीज है। इसका ज्ञान अब मुझे हुआ। मृत्यु का अर्थ है—पूर्णता। वह किसी का नाश नहीं कर सकती। उसमें कुछ भी नष्ट नहीं होता।'

साहित्य—टैगोर ने दर्जनों उपन्यास, सैकड़ों कहानियां और अनेक नाटक लिखे हैं। उपन्यासों में—'दो बहिनें', 'नौका डूबी', 'गोरा', 'अन्तिम कविता', 'चार अध्याय', आँख की किरकिरी' तथा नाटकों में 'डाकघर', 'चित्रा', 'लालकनेर' और 'चंडालिका' है। लेकिन मूल रूप में वह कवि थे।

गीतांजलि—गीतांजलि के एक गीत का भावार्थ—'भगवन्! फूल की तरह आप ही आप खिला हुआ यह गीत तुम्हारा ही दिया हुआ है। यह फूल देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। अब इसको अपनाकर मैं तुम्हें समर्पित करता हूं। सो तुम स्नेह से हँसकर इसको अपने हाथ से ग्रहण करो। प्रभो, कृपा करो! मेरा मान रखो।'

नोबल पुरस्कार—सन् 1912 ई. में रवि बाबू ने विलायत में अपनी बांग्ला 'गीतांजलि' का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस 'गीतांजलि' के गीत-पुष्पों की सुगन्ध यूरोप के लोगों को इतनी आकर्षक और मनोहर मालूम हुई कि सन् 1913 ई. में स्वीडन निवासी महात्मा नोबल का स्थापित किया हुआ नोबल पुरस्कार रवीन्द्र बाबू को ही दिया गया। इस पुरस्कार का निर्णय करने वाली विद्वत्सभा ने सर्वसम्मति से यह निर्णय प्रकट किया है कि यह ग्रंथ संसार का सत्य-हित-साधन करने वाला और मनुष्य मात्र के चित्त को शांति देने वाला है। उस अवसर पर रवीन्द्रनाथ को अभिनन्दन पत्र देते समय यूरोप की विद्वत्सभा ने ये उद्‌गार व्यक्त किये थे—

अभिनंदन—'मनोहर कविता ही आपके लिए ईश्वरीय वरदान है। आप इस वरदान का पवित्र और मंगल कार्य में उपयोग कर रहे हैं। आपने चित्त को आनन्द

दिया है। मन को शांति दी है। कानों को गाना सुनाया है। नेत्रों को सौन्दर्य के रूप दिखलाए हैं और आत्मा को उसके दिव्य स्वरूप का ज्ञान करा दिया है।'

इन शब्दों से रवीन्द्र बाबू की काव्य-प्रतिभा और उनकी 'गीतांजलि' का महत्त्व भली भांति प्रकट हो जाता है। गीतांजलि पर एक लाख बीस हजार रुपये का जो पुरस्कार उनको मिला। वह उन्होंने अपनी परमप्रिय संस्था—बोलपुर के 'शांति निकेतन' को दे दिया।

देश भक्ति

गीत क्रमांक-1

आमार सोनार बांगला आमि तोमाय भालो बासी।
चिरोदिन तोमार आकाश तोमार बातास
ओ मां तोमार प्राणे बाजाय बांसी
सोनार बांगला आमि तोमाय भालो बासी
ओ मां फागुने तोर आमेर बोले घ्राने पागल कोरे
ओ मां अघ्राने तोर भरा खेते ओ मां आमि की देखे ही मधुर हासी।।1।।
आमार सोनार बांगला.....

ओ मां तोर खेला घोरे, शिशु काल काटिलो रे,
ओ मां तोर ओंगे माटी, ओ मां खेला घोला सोकोल
फेले ओमां तोमार कोलेई-छुटे आसि।।2।।
आमार सोनार बांगला.....

गीत क्रमांक-2

ओ आमार देशेर माटी तोमार पोरे ठेकाई माथा
तो माते तोमाते विश्वमाये आँचल पाताय।
ओ आमार.....

'अन्याय सह लेने वाला भी अपराधी होता है। यदि वह न सहा जाए तो फिर कोई किसी से अन्यायपूर्ण व्यवहार कर ही नहीं सकेगा।' रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सन् 1919—जलियांवाला बाग के हत्याकांड पर विश्वकवि ने 'सर' की उपाधि त्याग दी। उन्होंने सरकार को लिखा—'पंजाब में स्थानीय दंगों को शांत करने के लिए जिस नीति का सरकार ने अनुसरण किया है, उससे हमें बहुत भारी व्यथा पहुँची है.... जिस अनुचित तथा क्रूर नीति से उन भाग्यहीन व्यक्तियों को

दंड दिया गया है उसका उदाहरण सभ्य संसार की सरकारों में नहीं मिलता। निहत्थे, साधनरहित नागरिकों पर जिस संस्था ने अत्याचार किए हैं उस संस्था के राजनैतिक औचित्य के प्रति हमारा भारी विरोध है....।

मैं उन भूखे, व्यथा से व्यथित करोड़ों देशवासियों के लिए केवल यही कर सकता हूं कि ऐसी घटनाओं का विरोध कर उसका परिणाम अपने ऊपर लूँ। ऐसी स्थिति में सम्मान के पदक हमारे लिए अपमान के चिह्न हैं।.... इन्हीं दु:खदायी कारणों से व्यथित होकर मैं सरकार से प्रार्थना करता हूं कि मुझे उस उपाधि से मुक्त किया जाए जो सम्राट् ने मुझे दी है।'

शिक्षा सेवा—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने देश के बालक-बालिकाओं को भारत की प्राचीन परिपाटी से शिक्षा देने के लिए कोलकाता नगर में अपनी एक निजी पाठशाला स्थापित की थी। इस पाठशाला में कितना तप-त्याग करना पड़ा इस विषय में अपने एक पत्र में श्री ऐंड्रयूज को उन्होंने लिखा था—'इस पाठशाला को चलाने के लिए मैंने अपनी पुस्तकें बेचीं। अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के अधिकार बेचे। जो कुछ मेरे पास था; सब बेच डाला। उस समय मैंने कौन-कौन से प्रयत्न किए और कैसी-कैसी कठिनाई झेली, क्या बताऊँ? इस पाठशाला को स्थापित करने में मेरा यह उद्देश्य था कि विद्यार्थियों में देशाभिमान की जागृति हो। फिर आगे चलकर उसमें अध्यात्म विद्या की शिक्षा बढ़ा दी थी। उस समय की कठिनाइयों और संकटों के कारण मेरी मानसिक दशा में एक विचित्र परिवर्तन उपस्थित हुआ था।'

शांति-निकेतन—रवीन्द्र बाबू की कोलकाता की यह पाठशाला तो नहीं चल सकी, पर पाठशाला चलाने की लगन उनके मन में बराबर लगी रही। उनके पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने, कोलकाता से कुछ दूर, बोलपुर नामक स्थान के घने जंगल में अपने भगवद्भजन के लिए, लगभग चालीस वर्ष पहले एक आश्रम बनाया था। यहां उक्त महात्मा को अपूर्व शांति का अनुभव होता था। और इसी कारण इसका नाम 'शांति-निकेतन' रखा गया।

विदेशों में प्रतिष्ठा—'नोबल पुरस्कार' के मिलने पर रवीन्द्र बाबू का नाम सारे संसार में विख्यात हो गया। उनकी 'गीतांजलि' के अनुवाद संसार की प्राय: सभी सभ्य भाषाओं में प्रकाशित हुए। अंग्रेजी में तो उसके कई उत्तमोत्तम और सुन्दर संस्करण निकाले गए हैं। गीतांजलि का दिव्य आनन्द प्राप्त करके स्वाभाविक ही कवीन्द्र-रवीन्द्र के दर्शन की और उनके प्रत्यक्ष उपदेश सुनने की अभिलाषा पश्चिमी लोगों को हुई। अतएव अनेक देशों के विद्वानों ने अपने-अपने देशों में पधारने के लिए रवीन्द्र बाबू को आमंत्रित किया। इधर रवीन्द्र बाबू को भी

देश-देशांतर की यात्रा में पहले से ही बहुत आनंद आता था। प्रकृति निरीक्षण और मानवी चरित्र का अध्ययन उनके अत्यन्त प्रिय विषय रहे थे। इसलिए उन्होंने पिछले वर्षों में इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन, स्विटजरलैंड, अमरीका इत्यादि सभी पश्चिमी देशों की यात्रा की। इधर पूर्वी देशों में चीन, जापान, स्याम और जावा, बाली, मलाया इत्यादि पूर्वीय द्वीपों में भी उन्होंने अपना दिव्य संदेश पहुँचाया। सब देशों के विद्वानों ने तथा कई देशों की सरकारों ने भी उनका अपूर्व गौरव से आदर-सत्कार किया।

उनके उपदेश के विषय में एक पश्चिमी लेखक लिखता है—'रवीन्द्रनाथ के व्याख्यान सुनकर हमको बहुत कौतूहल हुआ। ऐसा जान पड़ा कि भारत की प्राचीन अध्यात्मविद्या हमारे देश में पहुँचाने वाले ये हमारे नवीन गुरु हैं। इनका व्याख्यान सुनते समय हमको ऐसा मालूम हुआ जैसे हम किसी ऋषि के आश्रम में बैठकर उनका उपदेश सुन रहे हों।'

दर्शन—भिन्न-भिन्न देशों में रवीन्द्र बाबू ने जो व्याख्यान दिए हैं उनका संग्रह 'साधना' नामक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में स्वार्थ और परमार्थ संबंधी उनके उच्च विचार भली भांति प्रकट हुए हैं। रवीन्द्रनाथ ने सैकड़ों ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, निबंध, प्रबंध इत्यादि सब प्रकार के ग्रंथ हैं। कविता-रत्नों की तो बहुत विपुलता है, जिनमें नाना प्रकार के भावात्मक गान भी हैं। उनकी 'गीतांजलि' को जो सम्मान सारे संसार में प्राप्त हुआ वह आधुनिककाल के अन्य किसी भारतीय ग्रंथ को नहीं प्राप्त हुआ है।

पत्रकारिता—रवीन्द्र बाबू ने अपनी युवावस्था में 'बालक' नामक एक मासिक पत्र निकाला था। इसके बाद 'भारती', 'भंडार', 'साधना' और 'बंग-दर्शन' नामक पत्रों का भी उन्होंने समय-समय पर बड़ी योग्यता से संपादन किया। 'प्रवासी' के 'संकलन' नामक स्तंभ का भी उन्होंने कुछ काल तक संपादन किया था। अपने संपादन काल में उन्होंने अनेक नवीन लेखकों को सुचारु रूप से लेखन-कला की ओर प्रवृत्त करके उनको प्रोत्साहित किया।

स्वर संगीत

गान के सुर—'गान के सुर के आलोक में इतनी देर बाद जैसे सत्य को देखा। अन्तर में यह ज्ञान की दृष्टि सदा जागृत न रहने से ही सत्य मानो तुच्छ होकर दूर खिसक पड़ता है। सुर का वाहन हमें उसी परदे की ओट में सत्य के लोक में वहन करके ले जाता है, वहां पैदल चल कर नहीं जाया जाता। वहां की राह किसी ने आंखों नहीं देखी।'

स्वर धारा—'तुम्हारे सुर की धारा मेरे मुख और वक्षःस्थल पर सावन की झड़ी के समान झड़ पड़े। उदय कालीन प्रकाश के साथ वह मेरी आंखों पर झड़े।

निशीथ के अंधकार के साथ यह गंभीर धारा के रूप में मेरे प्राणों पर झड़े, दिन-रात वह इसी जीवन के सुखों और दुःखों पर झड़ती रहे।

तुम्हारे सुर की धारा सावन की झड़ी के समान झड़ती रहे। जिस शाखा पर फल नहीं लगते, फूल नहीं खिलते उस शाखा को तुम्हारी यह बादल-हवा जगा दे। मेरा जो कुछ भी फटा-पुराना और निर्जीव है, उसके प्रत्येक स्तर पर तुम्हारे सुरों की धारा झड़ती रहे। दिन-रात इस जीवन की भूख पर और प्यास पर वह सावन की झड़ी के समान झड़ती रहे।

श्रावनेर धारारमतो पड़ुक झरे पड़ुक झरे,
तोमारि सुर त आमार मुखेर परे, वुकरे परे।
पूरबेर अलोर साथे झड़ुक पाते दुइ नयने-
निशीथेर अंधकारे गंभीर धारे झड़ुक प्राणे
निशि दिन एइ जीवनेर सुखेर 'परे दुखेर, परे'
श्रावणेर धारार मतो पड़ुक झरे पड़ुक झरे।।
ये शाखाय फूल फोटे ना फल धरे ना एके बारे।
तोमारि बादल बाये दिक् जागाये सेइ शाखा रे।
या किछू जीर्ण आमार दीर्ण आमार जीवन धारा
ताहारि स्तरे-स्तरे पड़ुक झरे सुरेर धारा
निशि दिन एइ जीवनेर तृषार, 'परे भुखेर, परे'
श्रावणेर धारार मतो पड़ुक झरे पड़ुक झरे।।

इस प्रकार सुर की धारा रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में समस्त जीर्णता, बंध्यता, असफलता और क्षुद्र-प्रयोजनों को बहाकर मनुष्य को सहज-सत्य के सामने खड़ा कर देती है। निस्संदेह संगीत ऐसी ही वस्तु है।

राजनैतिक जागरण का युग

यह युग भारतवर्ष में राजनैतिक जागरण का युग है। रवीन्द्रनाथ ने किसी जमाने में राजनैतिक आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था। परन्तु बहुत शीघ्र ही उन्होंने देखा कि जिन लोगों के साथ उन्हें काम करना पड़ रहा है, उनकी प्रकृति के साथ उनका मेल नहीं है। रवीन्द्रनाथ अन्तर्मुखी-साधक थे। हल्ला-गुल्ला करके, ढोल-पीट के, गला फाड़ के लेक्चरबाजी करके जो आंदोलन, प्रदर्शन किया जाता है, वह उन्हें उचित नहीं जंचता था। देश में करोड़ों की संख्या में दलित अपमानित, निरन्न-निर्वस्त्र लोग हैं, उनकी सेवा करने का रास्ता ठीक वही रास्ता नहीं है, जिस पर वाग्वीर लोग शासक वर्ग को धमका कर चला करते हैं। शौकिया ग्रामोद्धार करने वालों के साथ उनकी प्रकृति का एकदम मेल नहीं था। जो लोग सेवा करना

चाहते हैं उन्हें चुपचाप सेवा में लग जाना चाहिए। सेवा का विज्ञापन करना सेवा भावना की विरोधी बात है। उन्होंने हल्ला-गुल्ला करने वालों को लक्ष्य करके गाया था—

ओरे तोरा
नेइवा कथा ब'लाले
दांड़िये हाटेर मध्यिखाने
नेइ जागालि पल्ली।।
मरिस् मिथ्ये ब'के-झ'के
मने मनेइ ज्व'ल्लि—
नेइ जागालि पल्ली।।
देखे केवल हासे लोके,
ना हय निमे आपन मनेर आगुन,
मने मनेइ ज्व'ल्लि—
नेइ जागालि पल्ली।।
अतरे तोर आछे की-ये,
नेइ रालि निजे-निजे,
ना हय वाद्यगुलो वंध रेखे
चुपचापेइ च'ल्लि—
नेइ जागालि पल्ली।।
काज थाके तो कर गे ना काज,
लाज थाके तो घुचो गे लाज
ओरै, ये-ये तोरे ब'लेछे,
नइ वा ता'ते ट'ललि—
नेइ जागालि पल्ली।।

अरे भाई! क्या बिगड़ गया यदि तूने कोई बात नहीं कहीं? बाजार में खड़े होकर अगर तूने ग्रामों को जगाने का काम नहीं ही किया तो क्या हो गया! बेकार बकवास करके मर रहे हो, देखकर लोग केवल हंसते हैं। अपने मन की आग से तुमने मन ही मन जला लिया तो क्या बुरा हुआ? क्या हुआ जो तुमने गांव को नहीं जगाया। तुम्हारे मन में क्या है जो तुमने खुद-ब-खुद चिल्लाकर नहीं कहा तो क्या बिगड़ गया। न हो, ये बाजे बंद कर के और चुपचाप ही चल दिए तुम! अरे भाई, तुमने ग्रामोद्धार नहीं किया यदि कुछ काम हो तो जावो न, उसे करो, यदि तुम्हारे भीतर कहीं लाज हो जावो न, सबकी लाज बचावो। अरे भाई! किसने तुम्हें

क्या कहा है, इस बात से तुम नहीं ही विचलित हुए तो क्या बिगड़ गया। न हुआ, तुमने ग्रामोद्धार नहीं ही किया।'

स्वदेश भक्ति और साधना के गीत—उनकी स्वदेश भक्ति उनकी भगवद् भक्ति की विरोधिनी नहीं थी। उनके ऐसे बहुत थोड़े गान हैं जिन्हें निश्चित रूप से स्वदेश भक्ति के गान कहा जा सकता है, नहीं तो साधारणतः राष्ट्रीय गानों के रूप में प्रचलित उनका ऐसा शायद ही कोई गान हो जो भक्ति और साधना के अन्यान्य क्षेत्रों में व्यवहृत न हो सकता हो। उनकी समस्त साधना का लक्ष्य एक ही आनन्द-धाम भगवान् था। यदि किसी कार्य का उसके साथ विरोध है तो उसे उचित नहीं माना जाना चाहिए। उनका प्रसिद्ध उद्‌बोधन संगीत, जिसमें उन्होंने अकेले ही समस्त दुःखों को सिरथः स्वीकार करके अग्रसर होने की सलाह दी है। वस्तुतः यह स्वदेश भक्ति तक सीमित नहीं। वह आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर बढ़ने का आह्वान है।

यदि तोर डाक सुने केउना आसे
तबे एकला चलो रे

देश माता के प्रति जो भक्ति है, वह क्या किसी स्वार्थ के कारण है? माता के प्रति पुत्र का प्रेम अहैतुक होता है।

सार्थक जन्म आमार, जन्मेछि ए देशे।।
सार्थक जन्म मागो तोमाय भाल बेसे।।
जानिने तोर धन रतन, आछे किंना रानीर मतन।।
शुधू जानि आमार अंग जुड़ाय तोमा छपाय एसे।।
कोन् बनेते जानिने फल गंधे एमन करे आकुल।।
कोन् गगने ओठे रे, चांद एमन हासिए से।।
आँखि मेले तोमार आली प्रथम आमार चीख जुड़ाल।।
ओइ आलो तेई नयन रेखे मोरबो नयन शेले।।

अर्थ—माता मेरा जन्म सार्थक है जो इस देश में पैदा हुआ हूं। मेरा जन्म सार्थक है जो मैं तुझे प्यार कर रहा हूं। मुझे ठीक नहीं मालूम कि तेरे पास किसी रानी की भांति कितना धन है, कितने रत्न हैं। सिर्फ इतना ही जानता हूं कि तेरी छाया में आने से मेरे अंग-अंग जुड़ा जाते हैं। मैं ठीक नहीं जानता कि और किसी वन में ऐसे फूल खिलते हैं या नहीं, जो इस प्रकार अपनी सुगंधि से आकुल कर देते हैं, यह भी नहीं जानता कि किसी आसमान में ऐसी मधुर हंसी हंसने वाला चांद उठता है या नहीं, सिर्फ इतना ही जानता हूं कि तुम्हारे प्रकाश में पहले-पहल मैंने आंखें खोली और वे जुड़ा गई। बस इसी आलोक में आंखें बिछाए रहूंगा और अन्त में इसी आलोक में उन्हें मूंद भी लूंगा।

रवीन्द्रनाथ की प्रेरक वाणी

अपूर्णता का नाम ही दुःख है, बुराई है। सृष्टि अपूर्ण है जब तक अपूर्ण सृष्टि में रहेंगे तब तक दुःख होगा। जैसे-जैसे अपने हृदय से स्वार्थ हटाते जायेंगे उतना दुःख दूर हो जायेगा। आत्म विस्तार से दुःख हलका होता जायेगा।

सोबार ऊपर मानव सत्य
तहार ऊपर नाहि।

मानव की महत्ता उसके भोगने में नहीं, उसके त्याग में है। मनुष्य इसलिए मुकुटमणि नहीं है कि उसके पास सत्ता या वैभव है, वह इसलिए महान् है कि 'मनुष्य के पास धर्म है'। वास्तविक धर्म ईश्वर की विस्मयकारी शक्तियां नहीं है, मनुष्य के रूप में ईश्वर की अभिव्यक्ति है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने पाश्चात्य संस्कृति व भारतीय सभ्यता का बुनियादी अन्तर बड़े मार्मिक शब्दों में बयान किया है। वे लिखते हैं, जब यूरोप का एक मजदूर व किसान दिन भर काम करके थका हुआ शाम को घर आता है तो अपनी थकान मिटाने के लिए शराब पीता है और अनाचार करता है। किन्तु भारत का किसान अपनी थकान भजन-कीर्तन द्वारा भूल जाता है और भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है।

दोनों सभ्यताओं में हम एक और विशेष अन्तर देखते हैं। विदेशों में अगर आप पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर किसी रमणीय स्थान पर पहुंचेंगे तो वहां एक 'बार' या शराब की दूकान देखेंगे। लेकिन भारत की यह विशेषता है कि इस प्रकार के प्राकृतिक स्थलों में निश्चित ही एक कलापूर्ण मन्दिर या तीर्थ के दर्शन मिलेंगे। हमारे देश में पर्वतारोहण के साथ-साथ धर्म-भावना का समावेश रहा है। इसलिए आज हम गंगोत्री, बदरीनाथ, अमरनाथ, कैलास व गौरीशंकर के भव्य दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

विदेशों में नाम कमाना हो तो करोड़पति व अब तो अरबपति बनना जरूरी होता है, या तो फिर बड़ा राजनेता, जिसके हाथ में महान् सत्ता हो। किन्तु भारत में तो एक 'सन्त' व 'महात्मा' के पीछे ही सारी जनता चलती है और उसकी जय-जयकार करती है।

भारत की संस्कृति महलों व प्रासादों में नहीं, वनों व मुनियों के आश्रमों में फलती-फूलती रही है। यहां के राजा-महाराजा अपने गुरुजनों के आदेशों के अनुसार ही राज्य संचालित करते रहे हैं। वसिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य व समर्थ रामदास की गुरु-परम्परा किसी और देश में खोजे भी नहीं मिल सकेगी। भारत भूमि में वह सहज प्राप्त है।

सत्यं शिवं सुन्दरम्
श्री अरविंद सत्यं के साधक हैं।
श्री गांधी शिवं के साधक हैं।
श्री रवीन्द्रनाथ सुन्दरम् के साधक हैं।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम एवं महिमा हमने अभी देखी। उनके जीवन में मोड़ लाने वाली और ऋषितुल्य महापुरुष बनाने वाली घटना है कि उनके दादा थे द्वारकादास टैगोर। वे थे फैशनेबुल डेडी। कोट-पेन्ट टाई लगाने वाले यूरोप की सभ्यता में पले हुए एवं उनमें पश्चिम के सारे हाव भाव बने हुए थे। ऐसे थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दादा द्वारकादास। वे कहते हैं हिन्दुस्तान के उद्धार का एक ही रास्ता है? क्या रास्ता है? हिन्दुस्तान को यूरोप की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। यूरोप की नकल करेगा तब इसका उद्धार होगा। नहीं तो इसका उद्धार नहीं हो सकता। वे इतने ज्यादा पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित थे। और भारत-भारतीयता से कोई प्रेम नहीं था। अचानक उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, वे उदास थे, निराश थे। अग्नि संस्कार करके लौट के आये तो कलकत्ते के भवन के बरामदे में टहल रहे थे। राजा थे। घर बड़ा साफ सुथरा रहता था। उनके यहां कोई कूड़ा-करकट का प्रश्न ही नहीं था। बहुत सफाई रहती थी। अचानक हवा से उड़कर एक कागज का पन्ना आ गया। उनको लगा कि कहां का पन्ना आ गया। आगे जाकर टहलते हुए कागज के पन्ने को पकड़ने लगे। पन्ने को पकड़ने गये तो हवा आयी तो और आगे उड़ गया। तो आगे बढ़े पकड़ने के लिए तो फिर उड़ गया। इस बार झपटकर कागज के पन्ने का पकड़ ही लिया। और उसको पढ़ने लगे। तो बस इससे उनके जीवन की धारा बदल गई। ईशावास्य उपनिषद् का प्रथम मंत्र उसमें छपा हुआ था। तो किसी अखबार वाले या पुस्तक वाले ने उसे रद्दी में डाल दिया होगा। बस उसको उनके जीवन को बदलना था। पढ़ा उसको **ईशावास्यमिद्ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।1।।**

सारा विश्व ईश्वर से आविष्ट है, ईश्वर का रचा हुआ है, सारे जगत् में ईश्वर व्याप्त है, सारा जगत् ईश्वर में है। इसलिए सब कुछ प्रभु को मानकर, प्रभु को समर्पित करके उसका उपभोग करना चाहिए। यह मेरा भाव इस भाव से नहीं, सब कुछ परमेश्वर का है इस भाव से उपभोग करना चाहिए। और किसी के भी धन के प्रति लोभ की दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। बस यह पढ़ते ही उन्होंने बड़ी-बड़ी सम्पत्तियां दान दे दी। उन्होंने विदेशी कोट-पेन्ट उतारकर धोती धारण कर ली। उनके जीवन में जो परिवर्तन आया उसकी छाप पड़ी उनके पुत्र महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर। वे महर्षि बन गये। उस महर्षि के घर आये रवीन्द्रनाथ ठाकुर। और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस श्लोक की महिमा में जो लिखा है उसे आप सोने से भी नहीं तोल सकते। इसने मेरे पूरे परिवार को बदल दिया है।

गीतांजलि के अमरगायक कवीन्द्र रवीन्द्र

जब तक संसार में कला तथा साहित्य का किंचित् मात्र भी सम्मान है, प्राच्य के विश्वकवि तथा गीतांजलि के अमर गायक, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गणना, विश्व के महानतम कवियों की श्रेणी में सदा होती रहेगी। उनका ब्रह्मा-नन्दोन्मुखी काव्योन्माद, उनके आत्मा के संगीत से गूंजते हुए ललित गीत, उनका मानव प्रेम से स्पन्दित दिव्य व्यक्तित्व तथा उन की अन्तर्राष्ट्रीय सार्वभौमिकता से समन्वित ज्वलन्त राष्ट्रीय भावना, सब मिलकर उन्हें मानवता की एक ऐसी अमूल्य विभूति बनाते हैं जिसने इतिहास के यशोमन्दिर में शाश्वत गौरव तथा अमर वैभव का स्थान प्राप्त किया तथा अपनी अलौकिक प्रतिभा के पराग से निखिल मानवता की फुलवारी को सुवासित कर दिया है।

प्रसिद्ध तत्त्वद्रष्टा हरमेन केसलिंग कवि-गुरु ठाकुर को युग का परम सनातन व्यक्ति मानते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र के चरणों में अपनी स्नेहांजलि चढ़ाते हुए वे कहते हैं—'मेरी ही नहीं, मेरे अनेक मित्रों की भी यह धारणा है कि वास्तव में इस पृथ्वी पर कहीं भी उनकी कोटि का व्यक्ति कई शताब्दियों में नहीं हुआ। ....आधुनिक भारतवासी को मानव की सर्वोच्च महत्ता में प्रतिष्ठित करने का सूत्रधार कार्य रवीन्द्रनाथ ने ही किया है। अपने मित्र रवीन्द्रनाथ की जितनी कद्र मेरे हृदय में है, उतनी किसी भी व्यक्ति की नहीं है, क्योंकि वे सर्वाधिक सार्वभौम हैं। उसका कार्य क्षेत्र सर्वाधिक व्यापक है और जितने लोगों को मैं जानता हूँ, उनमें वे ही एकमात्र पूर्ण पुरुष मुझे लगे।'

किसी व्यक्ति की हस्तलिपि देख कर उसकी प्रतिभा एवं महत्ता को आंकने की कला का पश्चिम में नया-नया विकास हुआ है। हरमेन केसलिंग के पास रविबाबू की एक हस्तलिपि को देख कर महापुरुषों की हस्तलिपियों के पारखी, हस्ताक्षर विज्ञान के आविष्कर्ता वयोवृद्ध फ्रांसीसी विद्वान् क्रीपो-जामीं की आंखों से अश्रुधारा छलक पड़ी—'ओह, सुन्दर! श्रेष्ठ!! यूरोपीय पुनरोदय-काल के बाद से मैंने इतनी उच्च कोटि की हस्तलिपि कभी देखी ही नहीं।'

1857 के भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की प्रतिक्रिया में जब ब्रिटिश शासन ने अपने पांवों तले भारतीयों को रौंदना प्रारंभ किया तो भारतीय जनमानस कांप उठा।

रक्त से लथपथ हुई भारतीय जनता जब घोर निराशा के बादलों में व्याकुलता से कराह रही थी तब 1861 में भारतीय क्षितिज पर 3 महापुरुषों का उदय हुआ। एक थे पण्डित मोतीलाल नेहरू जिनके पुत्र पं. जवाहरलाल नेहरू भारत के लिए वरदान बनकर आए।

दूसरे थे महामना पं. मदन मोहन मालवीय जिनकी महान् देन काशी विश्वविद्यालय के रूप में युग-युग तक भारतीय प्रज्ञा को प्रकाशित करती रहेगी। तीसरे थे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिन्होंने 'जन गण मन अधिनायक जय हे' का सुस्वर गायन कर पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा, द्रविड़, उत्कल बंग देश को पुनः जगा दिया तथा भारत जननी के भवितव्य की भव्य कल्पना भारतीय मानस को प्रदान की।

गीतांजलि के अमरगायक रवीन्द्र बाबू उस शब्दब्रह्म के अनन्य उपासक थे जिसका स्तवन वैदिक ऋषियों के मुख से वाग्धारा सरस्वती बन कर निःसृत हुआ था। देहाध्यास से ऊपर उठे हुए उस ऋषितुल्य महापुरुष को एक बार शांति निकेतन में कार्य करते हुए बिच्छू डस गया। सब को रोते-चिल्लाते देखकर गुरुदेव ने कहा—अरे! तुम सब चिल्लाते क्यों हो? बिच्छू ने मुझे कहाँ डसा है, उसने तो मेरे शरीर को डसा है। मुझे डसने का साहस ही उसमें कहाँ है?'

बाबू रवींद्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ भी महर्षि थे। उनके दादा श्री द्वारिका दास तो विदेशी सभ्यता के रंग में रंगे थे। अचानक एक दिन ईशोपनिषद् का प्रथम मन्त्र एक फटे हुए कागज पर छपा हुआ उनकी दृष्टि में पड़ गया—

ईशावास्यमिदं सर्वं, यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा-मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

अर्थात्, जगत् में जो कुछ है वह सब ईश्वर से आच्छादित है, उसी के दिए हुए दान के रूप में ही संसार की वस्तुओं का भोग करना चाहिए। किसी अन्य के धन की ओर गृध-दृष्टि नहीं रखनी चाहिये।

बस इसी एक मन्त्र ने राजा द्वारिका दास के जीवन की दिशा को बदल दिया। इस उपनिषदों के तत्त्वज्ञान को पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाने वाले रवीन्द्र बाबू विश्व में भारतीय तत्त्वज्ञान के सूर्य बनकर चमके। उन के भीतर का कवि उनके दार्शनिक व्यक्तित्व से भी ऊँचा उठ गया था। इसलिए कविगुरु के गीतों में हम भारत की शाश्वत वाणी का दर्शन पाते हैं जो पुरातनतम होते हुए भी नवीनतम है।

प्रारम्भ में एक भक्त की नाई वे पाते हैं—

अपनी चरण-धूलि के तल में, मेरे मस्तक को नत कर दो।
सारा अहंकार है मेरा, अश्रुधार में मज्जित कर दो।।

पश्चात् उनके भीतर का रहस्यवादी सन्त जाग उठता है और गाता है—

हे दूर से भी दूर, हे निकटतम।
जहां तू है निकट वहां तुझे
मानूंगा अपना।
जहां तू है सुदूर, वहां मानूंगा
अपने को तेरा।।

आलोक के उस अमर झरने को सम्बोधित करके गायत्री मन्त्र के गायक ऋषि विश्वामित्र की नाईं वे भी पुकार उठते हैं—

आलोकेर एइ झरना धाराए, धुइए दाओ।
आमार प्राणेर मलिनता, धुइए दाओ।।

हे आलोक के झरने, सविता देव! हमारे प्राणों की मलिनता को धो डालो।

अपने ससीम देह मन्दिर में ही उस असीम अनन्त प्रियतम की झांकी पाकर कवि श्रुतिमधुर वाणी में गाता है—

सीमार माझे असीम तुमी, बाजाओ आपन सूर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश, ताड़येत मधूर।

'हे मेरे असीम प्रियतम! आप मेरे शरीर की सीमा के भीतर से ही अपनी मधुर वंशी की तान बजाओ। मेरे भीतर से तेरा प्रकाश जगमग प्रकाशित होवे।'

यदि साधक प्रियतम से मिलने को व्याकुल है तो प्रियतम भी उस से मिलने को परम व्याकुल है—

मुझ से मिलने के लिए न जाने किस
अनादिकाल से तू चला हुआ है।
तेरे सूर्य-चन्द्र तुझे मेरी आंखों की
ओट नहीं कर सके।
अगणित प्रभात और संध्या की वेला
मैंने तेरे पैरों की आहट सुनी है।

अपने गीतों के पंखों से प्रभु के चरणों का स्पर्श करने वाले इस रहस्यदर्शी कवि का अपने बारे में कथन है—

चलिबो चलिबो जाइबो चले, पथेर प्रदीप जालिए।

मैं जा रहा हूँ, चलता ही चला जाऊंगा। संसार के मार्ग में ज्ञान का अमर दीपक जलाऊंगा।

अखिल विश्व में सत्य ज्ञान का दीपक जलाने वाले इस महामानव ने भारतीय संस्कृति के इस मन्त्र को साकार रूप दिया—**यत्र विश्वं भवत्येक नीड़म्।**

अर्थात्, जहाँ सारा विश्व एक ही नीड़ बन जाय और विश्व संस्कृति का वह अमर नीड़ है-शान्ति निकेतन।

निखिल मानवता को अपनी मंजु कला से जगाने वाले उन विश्व के अमर कलावन्त के यश में हम वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द की निम्न श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं—

'जिनके अन्तर्यामी की रसवन्ती किरणों ने अपने स्नेह स्पर्श से जन-जन के शतदल की पंखुड़ियाँ खोल आनन्द और रस का दाक्षिण्य मूर्त किया, जिनकी अनुराग-धारा ने सीमा के वज्र कपाट तोड़ कर मनुष्य को अपने ही गवाक्ष से मनुष्यता के दर्शन कराए, उन कवि-मनीषियों को मेरी अजर अमर चेतना सनातन काल तक श्रद्धांजलि चढ़ाकर भी तृप्त न होवे, यही मेरी कामना है।'

8 मई 1958
'वीर अर्जुन' में प्रकाशित

गीतांजलि एवं फ्रांस के प्रधानमंत्री 1939

पेरिस नगर में 1939 में एक चमत्कार हुआ। अचानक द्वितीय महायुद्ध छिड़ने का समाचार सुनते ही फ्रांस के प्रधानमंत्री के हृदय पर ऐसा आघात लगा कि वे प्रायः संज्ञा शून्य से हो गए। जब बड़े-बड़े डॉक्टर हार गए तो प्रधानमंत्री ने संकेत से बताया कि मेज पर पड़ी टैगोर की गीतांजलि की प्रति उठाई जाए तथा पेरिस की किसी सुन्दर गायिका से गान कराया जाए। जब सचमुच गीतांजलि के रहस्यवादी गीतों का गान करवाया गया तो प्रधानमंत्री के प्राणों में प्राण आए।

× × ×

जीविका है, जीवन के लिये और जीवन है, जीवन-धन जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

भारत-भाग्य विधाता कविगुरु रवीन्द्रनाथ

संसार ने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को जगती के महानतम कवियों तथा साहित्यिक विभूतियों में से एक माना है। वे हमारे मार्गदर्शक, तत्त्वद्रष्टा और गुरु थे। प्लेटो तथा सुकरात का प्राचीन पाश्चात्य जगत् के लिए जितना महत्त्व था, वर्तमान भारत के लिए रवीन्द्रनाथ का वही महत्त्व है। वे सभी दिशाओं में हमारे राष्ट्र के आचार्य अथवा महापुरोहित हैं, क्या हमारे राष्ट्रीय साहित्य तथा कला में, क्या सामाजिक तथा राजनैतिक दर्शन में अथवा जनगण के कल्याण तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए विधायक अर्थ नीति के प्रणयन में। वे सचमुच सच्चे अर्थों में राष्ट्र के गुरुदेव हैं।

टैगोर वे कवि तथा गायक थे जिन्होंने जाति को जगाने के लिए भावात्मक प्रेरणा प्रदान की।' इन शब्दों में स्वर्गीय डा. सत्यपाल (भूतपूर्व अध्यक्ष पंजाब विधानसभा) ने कविगुरु को श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

पाश्चात्य तत्त्वद्रष्टा हरमेन केसलिंग का कथन है, 'रवीन्द्रनाथ एक राष्ट्र के जन्मदाता ही नहीं उसके निर्माता भी हैं।'

भारत की मुक्ति मानव की मुक्ति

कविगुरु प्रायः कहा करते थे—'भारत मुक्ति निखिल मानवता की मुक्ति का द्वार है। अतः वे राष्ट्रवाद के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रवाद के प्रचारक थे। अपनी मातृभूमि की उपेक्षा कर उन्होंने विश्वमानवता का राग नहीं गाया।

जन गण मन अधिनायक जय हे

रवीन्द्र भारत के ओजस्वी राष्ट्रगीत के अमर गायक हैं। वे विद्यावादी कवि निखिल विश्व के जन गण के मनों के अधिनायक (परमेश्वर) की जय गाते हैं जो भारत के भाग्य का विधाता है। यहीं कवि का उदार राष्ट्रवाद प्रकट होता है।

स्वातन्त्र्य मंत्रद्रष्टा

राष्ट्रीय स्वातंत्रता की प्रशस्ति में कवि गाते हैं—

जहां मन है निर्भय, शीर्ष गौरव से उन्नत
जहां ज्ञान है मुक्त विश्व है नहीं विभाजित

छोटी तंग घरेलू स्वार्थी दीवारों से
जहां वाणी उठती है सत्य के अन्तस्तल से
जहां भुजाएं श्रम की पूर्णोन्मुख सदैव हैं
जहां बुद्धि की शुभ्रधार है नहीं खो गई
जड़ स्वभाव की सूखी मरुतल में।
जहां मनुज मन स्वयं तुम्हीं से प्रेरित होता
नित्य विकासोन्मुखी ज्ञान में तथा कर्म में
उसी मुक्ति के महास्वर्ग में हे जगदीश्वर!
जागे मेरा देश मुक्ति-महिमा से मंडित।।

अपना इतिहास अपनी संस्कृति

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की स्पष्ट चेतावनी है—'हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि हम किसी दूसरे देश का इतिहास उधार लेकर गौरव से एक राष्ट्र के रूप में नहीं जी सकते! उधार ली हुई वस्तुएं हमारी शोभा नहीं बढ़ाती बल्कि वे हमारे जीवन का ह्रास ही करती हैं।'

भारत तीर्थ

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में भारत एक पुण्य तीर्थ है। वे अपने एक प्रेरणाप्रद गीत में गाते हैं—

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे,
एई भारतेर महामानवेर सागर-तीरे।।

अर्थात्—

हे मेरे मन! इस पुण्य तीर्थ में
धीरे-धीरे जाग!
इस भारत के महा-मानव-
सागर के तट पर तू जाग!
यहां खड़ा हो दोनों हाथ जोड़,
मैं मानव-देवता को नमस्कार करता हूं।
अपने गीतों से अत्यन्त हर्षपूर्वक
राष्ट्र देवता का अभिनन्दन करता हूं।

इसमें एकता की अग्नि के यज्ञ में अनेकता की आहुति देकर भेद-भाव त्याग, एक विराट हृदय को जागृत किया है, आज उसी की साधना एवं आराधना के

यज्ञ-भवन का द्वार खुला है। यहाँ भारत के महा-मानव-सागर तट पर एक भाव से सब का मस्तक नत हो गया है।

अपमान भार को हलका कर ले।
माता का अभिषेक करने शीघ्र आ, आ,
सबके स्पर्श से पवित्र हुए तीर्थ से आज
भारत के महा-मानव-सागर-तीर का
मंगल घट भर गया है।
उस से माता का अभिषेक करने शीघ्र आ।।

हिन्दू-नवोत्थान के अमर कवि

श्री रामधारीसिंह दिनकर ने संस्कृति के चौथे अध्याय में लिखा हैं—'रवीन्द्र और इकबाल, दोनों भारतीय नवोत्थान के कवि हैं, एक हिन्दू नवोत्थान के और दूसरे मुस्लिम नवोत्थान के। शुद्ध भारतीय नवोत्थान जैसा कोई आन्दोलन भारत में नहीं उठा। जिस से अनुमान होता है कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ मिल कर कभी बिल्कुल एक नहीं हुईं। राजनीति के मुख से झूठ बोला जा सकता है, तर्क और दर्शन भी सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध कर सकते हैं। यहाँ तक कि इतिहास की मिथ्या व्याख्याओं से भी असत्य की पुष्टि की जा सकती है!' यह बात तो सच है कि रवि बाबू की मूल प्रेरणा हिन्दू धर्म से ही थी किन्तु हिन्दुत्व निष्ठा के कारण उन की रचनाओं को भारतीय संस्कृति का व्याख्यान न मानना उनके साथ तथा स्वयं महान् हिन्दू संस्कृति के साथ भी अन्याय करना है!' आगे चल कर श्री दिनकर जो लिखते हैं वह अनायास ही रवीन्द्र एवं हिन्दुत्व, दोनों के प्रति श्रद्धांजलि बन जाती है। वे लिखते हैं—'हिन्दुत्व का कवि होने के कारण रवीन्द्रनाथ कोमल, अहिंसक, तथा परलोक के प्रेमी हैं और इस्लाम का कवि होने के कारण इकबाल दर्पशाली तथा आवेशयुक्त हैं एवं वे इहलौकिकता को बढ़ावा देते हैं।'

भारत प्रेम का मर्म

कविगुरु लिखते हैं—'मैं भारत से प्रेम इसलिए नहीं करता कि मैं किसी भौगोलिक भूखण्ड की अन्ध भक्ति को मानने वाला हूँ, न ही केवल इसलिए कि मुझे भारत में जन्म पाने का अवसर मिल गया, अपितु इसलिए कि पिछले अनेक उथल-पुथल वाले युगों में से होते हुए भी भारत ने उस जीवन्त वाणी को सुरक्षित रखा है जो उसके महान् पुत्रों के मुख से निःसृत हुई' : 'सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं ब्रह्म।'

मृत्युंजयी संस्कृति

ऋषि प्रज्ञा के स्वामी रवीन्द्रनाथ भारत की मृत्युंजयी संस्कृति को अपनी तपःपूत लेखनी का अर्घ्य चढ़ाते हुए लिखते हैं, मैं विश्वास करता हूँ कि

हमारे लिए यह गौरव का विषय है कि बहुत बड़ी क्रांतियों एवं संकटों से पूर्ण शताब्दियों के एक लम्बे क्रम में से गुजर कर भी....भारत विरोधों की तूफानी क्रोधाग्नि एवं मिट्टी की सब को धूल में मिलाने वाली प्रकृति के बावजूद भी अभी तक जीवित है।

बंग भंग पर कवि का सिंहनाद

1905 में जब लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का निश्चय किया तो कविगुरु की क्रांति वाणी सुनाई दी—

कवि तबे उठे एशो जदि थाके प्राण,
तबे ताइ लहो साथे, ताई करो आजि दान।
बड़ो दुःख बड़ी व्यथा-सम्मुखे ते कष्टरे संसार,
बड़ोई दरिद्र बड़ो क्षुद्र बध्द अंधकार।।

अर्थात्—हे कवि! यदि तुम में जीवन है, प्राण-शक्ति है तो उठो, मेरे पास आओ और मुझे अपने प्राण दान कर दो। देश में बड़ा दुःख है, व्यथा-कष्टों से भरा संसार है, बड़ा दारिद्र्य है, बड़ा क्षुद्र बद्ध अंधकार है।

रक्षाबन्धन पर ऐक्य का संदेश सुनाते हुए राष्ट्रकवि रवीन्द्र गाते फिरते—

बंगलार माटी बंगलार जल
पुन्न होक, पुन्न होक हे भगवान।

जलियांवाला बाग हत्याकांड पर कवि की हुँकार

13 अप्रैल 1919 के दिन पंजाब के फौजी शासन के रौरव अत्याचारों से कविगुरु की शांत आत्मा भी तड़प उठी तथा वाइसराय को उन्होंने पत्र में लिखा—'पंजाब में कुछ स्थानीय हलचल को शांत करने के लिए सरकार द्वारा जितना भयंकर पग उठाया गया है उस ने एक भयंकर धक्के के साथ हम पर प्रकट कर दिया है कि भारत में अंग्रेजी राज्य की पूजा के रूप में हम कितने अधिक लाचार हैं।' उन्होंने लिखा कि ऐसे अवसर पर हमारे लिए सब प्रकार की उपाधियाँ हमारी लज्जा को और भी लज्जाजनक बना देती हैं तथा उन्होंने अपनी सर की उपाधि को उतार कर वापस फेंका।

भारत छोड़ो का उद्घोष

अपने स्वर्गवास से कुछ समय पहले उन महान् लोकनायक ने ब्रिटिश सरकार को साहस के साथ ललकारा—'अपनी कीमत ले लो, यहाँ से बाहर हो जाओ और हमें अकेला छोड़ दो।'

भारत में पुनर्जन्म की आकांक्षा—कविगुरु के मार्मिक उद्‌गार हैं, 'मैं भारत में ही पुनः-पुनः जन्म लूंगा। समस्त दारिद्र्य, दुःख एवं दैन्य के बावजूद भी मैं भारत से ही सर्वाधिक प्यार करता हूँ।'

भारत की ज्योति मेरे नेत्र पुटों को चूम ले

मातृभूमि की अर्चना में अपना हृदय तक चढ़ाते हुए कविगुरु लिखते हैं— 'मेरे हृदय की सुगंधि का श्रेष्ठतम उपहार भारतमाता के अपने फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि संसार भर में कहाँ अन्यत्र चन्द्रमा इतने माधुर्य के साथ चमकता है जो मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौंदर्य से आप्लावित कर सके....मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अंतरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा मेरी यह आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिरनिद्रा में मुंद जाने से पूर्व भी इसी धरती का दिव्य प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।'

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण से अब तक रवीन्द्रनाथ कविता साहित्य में संसार के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। इनके छन्दों के अनगिनत आवर्तों और स्वर हिलोरों की मधुर अगणित थपकियों से पूर्व और पश्चिम की पथरीली चट्टानें ढहकर नष्ट होकर विषमता के स्थान पर समता की सृष्टि हुई। प्रतिभा के प्रसाद में संसार ने रवीन्द्रनाथ सर्वोच्च स्थान दिया। देखा गया कि एक रवीन्द्रनाथ में बड़े-बड़े कितने ही महाकवियों के गुण एक साथ मौजूद थे।

—महाकवि निराला

× × ×

राष्ट्र के नायकों को यह समझना चाहिये कि कर्तव्य का निर्णय एकाङ्गी नहीं होता। विपक्ष की गतिविधियों को देखते हुए राष्ट्र रक्षा का उपाय ढूढ़ना और उसे क्रियान्वित करना चाहिये।

—श्री मज्जगद्‌गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

मृत्युंजय कवि के मृत्यु-गीत

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी अविनश्वर प्रतिभा के पराग से विश्व भुवन में जो सुवास विकीर्ण कर गए हैं, वह काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द, दोनों क्षेत्रों में उन्हें एक मृत्युंजय कवि का गौरव प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। जीवन तथा मृत्यु सदा-सर्वदा से मानव प्रज्ञा के लिए एक निगूढ़ प्रहेलिका बने रहे हैं। इस प्रहेलिका को सुलझाते-सुलझाते अनन्त कोटि मानव स्वयं मृत्यु के मुख में जा कर पहेली बन गए किन्तु यह पहेली भूतकाल को खा-खाकर भी अभी तक इतनी क्षुधातुर है कि वर्तमान को भीषण चुनौती देती हुई भविष्य को भी निगल जाने को मुंह बाए खड़ी है। स्वयं मृत्यु का ग्रास बन जाने वाला कभी भी मृत्यु के पार नहीं देख सकता स्वयं भीषण सिंह की द्रंष्ट्राओं में अटका हुआ जीवन कभी भी शेर के दांत नहीं गिन सकता। काल के तीक्ष्ण दांतों के बीच में सांस लेता हुआ जीव कभी काल के स्वरूप को पहचान नहीं सकता। किन्तु जो कालचक्र की परिधि पर चक्कर न खाते हुए उसके मूल (केन्द्र) पर खड़े काल की समग्र लीला के द्रष्टा बन गए हैं, जो अपनी महान् आत्मा द्वारा महाकाल (महेश्वर) से संयुक्त होकर कालातीत बन गए हैं, वे अपने मृत्युंजय पद से जीवन एवं मृत्यु पर दृष्टिपात करते हुए जो कुछ साक्षी देते हैं वह अमर्त्य की मर्त्य के बारे में साक्षी है, वही जीवन-मृत्यु प्रहेलिका को सुलझाने के लिए चिर तत्पर मानवीय प्रज्ञा का सुफल है। कविगुरु रवीन्द्र के जीवन-मृत्यु गीत मृत्युंजय पद से गाये हुए मृत्यु के तराने हैं। अतः उनमें मानवात्मा का सहज सुलभ मृत्यु भय नहीं वरन् एक विजयी आत्मा का मृत्यु विजय का गौरव गीत है।

जीवन एवं मृत्यु के आर-पार देख सकने वाली उनकी दिव्य दृष्टि ने जीवन को एक लीला के रूप में पहचाना था। वे स्वयं अपने को लीलामय ब्रह्म का साझीदार कह कर पुकारते थे। आज 7 अगस्त को उनकी पुण्यतिथि (निर्वाण दिवस) पर उनकी विमल वाणी के भाव मुकुल जो उन्होंने समय-समय पर मृत्यु देवता के चरणों पर चढ़ाए थे, हम पाठकों के ज्ञानवर्धन के हेतु उनके समक्ष रखते हैं—

मृत्यु के रहस्य की जिज्ञासा

कवीन्द्र मृत्यु का रहस्य जानने के लिए जिज्ञासु हो कह उठते हैं—

आज शायद, मृत्यु तट के पार जाते समय, उसी के अर्थ की ही खोज में जगत् से मुंह मोड़ कर मैं जा रहा हूँ।

वे अपने एक अन्य अनूठे पद में कहते हैं—

अरे वारिधि तेरी लहरों की क्या भाषा?
मेरी भाषा एक चिरन्तन प्रश्न रूप है
अरे गगन तेरा क्या उत्तर है बदले में?
मेरा उत्तर महामौन की ही भाषा है?

सचमुच इस चिरन्तन प्रश्न के उत्तर में चिरन्तन मौन के सिवा मानव के पास और कुछ है भी नहीं।

हार-जीत का खेल

वे 1941 के अपने एक अन्य गीत में गाते हैं।

यह हार-जीत का खेल, जीवन की झूठी माया यह शिशु काल से विज़ड़ित है पद-पद में विभीषिका, दुःखमय परिहास पूर्ण।

भय का विचित्र है चलच्चित्र—

मृत्यु का निपुण शिल्प है विकीर्ण अंधकार में।

मृत्यु की गोदी में क्रीड़ा

मृत्यु नामक एक छोटे गीत में कवि ने एक रंगीन कल्पना की है कि मृत्यु ही सत्ता है तथा जग के बालक कभी उसकी गोदी में खेलते-खेलते सो जाते हैं, पुनः जागकर खेलने लग जाते हैं—

हे मृत्यु! आज मन में यह प्रश्न जागा।
'होती कहीं अगर जो तुम शून्य माया
होता न क्या निखिल का क्षण में विलोप?
सत्ता तुम्हीं जगत् की परिपूर्ण-रूपा
बच्चे समान हम क्या जाग के खिलाड़ी,
गोदी महान, उसमें, बस, खेलते हैं?'

मृत्यु के तीक्ष्ण दंश से गीत प्रवाह

कविगुरु के भरपूर यौवन में उनकी सहधर्मिणी के अकस्मात् देहावसान पर उनके युवक मन से उनकी अन्तर्वेदना सौ-सौ गीतों में प्रस्फुटित हो उठी—

मेरे या जीवन में तुमने
मिश्रित कर दई मृत्यु-माधुरी

वे पुनः गाते हैं—

तुमने मेरी जीवौ-मरिवौ
जुगल बाहु में बांधि लियो।

अर्थात्, हे प्रिये! तुमने मेरे जीने और मरने को अपनी युगल बाहुओं में बांध लिया है।

उनकी एक अन्य अनूठी उद्भावना है—

मृत्यु मझि आपे कों,
तुमने आप हरयौ है
मेरे या जीवन में अपनौ,
जीवन आनि धरयौ है।

हे प्रिये! क्या आज तुमने अपने आप को मृत्यु में हर लिया है या अपने जीवन को मेरे जीवन के बीच में आकर प्रतिष्ठित कर दिया है?'

आत्म के अमर गान

कविगुरु स्वयं लिखते हैं कि 'जगत् ने मेरी आत्मा को दुःख का मृत्युस्पर्शी चुम्बन दिया तथा बदले में मुझ से मधुर गीत मांगे।' यदि अविनश्वर कलावन्त जग को अमर गीतों का अनन्त दान दे सका तो उसका कारण यह था कि वह अमर आत्मा में श्वास लेने वाला कवि था जिसने शरीरों की नश्वर लीला से परे आत्मा की अमर ज्योति का साक्षात्कार किया था। गीता एवं उपनिषदों की मर्म वाणी में ही कविगुरु गाते हैं—

हे प्रभु मुझे अनन्त बनाकर,
तूने सुन्दर लीला खेली
नाशवान देहपात्र रिक्तकर,
पुनः पुनः नव जीवन भरते।
छोटी सी इस मम वंशी को,
लिए तुम्हीं फिरते नदी, पर्वत
उसमें अपना प्रेम फूँक
भरते रहते नूतन निशिदिन

श्रीमद्भगवद्गीता का वचन है—

वासांसि जीर्णानि यथाविहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।। 2/22

रवीन्द्रनाथ के अनुसार भी आत्मा नाशवान देह को रिक्त कर के नव देह में प्रवेश पाती है।

मरण का त्योहार

इन रहस्यदर्शी महापुरुष के लिये मृत्यु कोई भय की वस्तु नहीं है। वे इसे आत्मा-परमात्मा के मिलन का पुण्य त्योहार मानते हैं। वे चिरकाल से पलकें बिछाए अपने प्रीतम की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब वे आएं और कब प्रिय प्रीतम का अमर मिलन हो।

मृत्यु रूपी वधू को बुलाते हुए वे गाते हैं—

ऐ मेरे मरण,
तू कब वर की वेश भूषा पहन कर
शान्त मुस्कान के साथ आयेगा।
उस दिन के बाद नव वधू बन कर मैं अपना
निवास छोड़ दूंगा
और रात्रि के एकान्त में पति-पत्नी की भेंट होगी।
तब मैं तू का भेद नहीं रहेगा।
ऐ मेरे मरण आ और मुझ से बात कर।

एक अन्य गीत में वे विदाई के समय प्रसन्न चित्त से बड़े मनोहारी शब्दों में कहते हैं—

नहीं शोक करना मेरे हित
संग मेरा कर्म है और संग है यह विश्वास
खाली नहीं कभी हो चुका है पात्र मेरा
मैं शून्य को भी पूर्ण कर दूं
अचल व्रत धारण किया है।

जन्म एवं मरण का ऐक्य

रवीन्द्र की दृष्टि में जन्म एवं मृत्यु भिन्न न थे। वे तो जन्म एवं मृत्यु को उस लीलामय ब्रह्म की लीला मानते थे। इस गीत में वे जीवन एवं मृत्यु के एक साथ दर्शन करते हैं।

आज जन्म और मृत्यु दिवस हैं, निकट आ गए।
दोनों पास-पास बैठे हैं एक सिंहासन पर

दोनों का आलोक परस्पर सम्मुख, आकर।
गले मिल रहा मेरे जीवन की, सीमा पर।
रात्रि के चन्दा, प्रभात के शुक्र, तारे सम
एक मन्त्र मैं करता हूं दोनों, आवाहन।

अपने जन्म दिवस पर उन्हें मरण की स्मृति भी सुखकर लगती है। वे भाव विभोर हो कर निर्भय स्वर में गाते हैं—

सुन रहा हूं
तुम्हारी देहली पर घंटा बज रहा।
यह अन्तिम प्रहर का घंटा है।
उसी के साथ अपने क्लान्त हृदय के भीतर।
विदाई का द्वार खुलने की आवाज, सुन रहा है।
जो पास ही, सूर्यास्त के रंग से रंजित
पूरबी राग के सुर में बज रही है।
जीवन के स्मृति दीप में
जो आज भी ज्योति दे रही है
उन कई व्यक्तियों को लेकर
सप्तर्षि की दृष्टि के सामने
मैं तुम्हारी सांध्य आरती रचाऊंगा
दिनान्त के अन्तिम क्षण में मेरी मूक वीणा
तुम्हारे चरणों पर मूर्च्छित हो जाएगी और
मेरे पीछे रहेगा नागकेशर का, नया पौधा।
जिस में कभी फूल नहीं लगे हैं।
और पार जाने वाली नौका को न पा सकने वाला।
इस पार का प्रेम।
विरह स्मृति की मनोवेदना से, क्लांत होकर,
रात्रि के अन्त में,
वह प्रेम पीछे की ओर फिरकर, देखेगा।

प्रारम्भ में जीव सुख चाहता है, दुःख से दूर भागता है। बाद में दुःखों का भी उज्ज्वल पक्ष उसके सामने आता है तथा वह दुःख-सुख को समान समझने लगता

है। किन्तु बोध प्राप्ति के पश्चात् वह दुःख-सुख की धूप-छांह से उपराम हो जाता है, तभी वह आनन्द प्राप्त करता है। इसी प्रकार प्रारम्भ में जीवन मीठा लगता है, मृत्यु कड़वी। बाद में मृत्यु में भी कल्याण निहित दिखाई देता है तथा जीवन-मृत्यु दोनों समान दीखते हैं। जो जीवन-मृत्यु की सीमाओं से मुक्त हो गया हो वही वेद की वाणी में गाता है—

'यस्य छायामृतं यस्य मृत्यु।'

अर्थात्, जिस ईश्वर की छांह ही जीवन है तथा छाया ही मृत्यु है।' भगवान् ने गीता में भी कहा है—

अमृतं चैव मृत्युश्चसदसच्चाहंमर्जुन।

मृत्युंजय कवि

वे स्पष्ट देख रहे हैं कि मृत्यु उस अजर अमर अविनाशी तत्त्व का नाश नहीं कर सकती जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है, मृत्यु तो केवल इस नाशवान शरीर का ही अन्त करती है।

राहु सी मृत्यु,
डालती छाया केवल,
कर नहीं सकती ग्रास जीवन के स्वर्गीय अमृत के
जड़ के कवल में—
निश्चित जानता हूं मन में इस बात को।।

कवीन्द्र रवीन्द्र मृत्युंजय कवि थे। स्थान-स्थान पर वे मृत्यु का आवाहन कर उसे चुनौती देते हैं। अपने आप को वे अमर अविनाशी लीलामय का साझीदार समझते हैं। इस गीत में वे मृत्यु की तुच्छता को स्पष्ट कर देते हैं। वे काल को सम्बोधित करके चुनौती देते हैं।

क्या तुम इतने ही बड़े हो,
मृत्यु से तो बड़े नहीं हो।
मैं मृत्यु से भी बड़ा हूं
यही शेष कथन करके,
लो मैं जा रहा हूं।।

मृत्यु मोक्षद्वार

मानव का अन्तिम ध्येय मोक्षप्राप्ति ही है। इसी लक्ष्यपूर्ति के लिए चौरासी लाख योनियों में भटकता है पर ज्ञानचक्षुओं पर माया का आवरण होने के कारण

उसे औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान नहीं होता। सभी ब्रह्मदर्शी महापुरुषों ने मृत्यु का मोक्षद्वार के रूप में स्वागत किया है। कबीर के शब्दों में यह भाव इस प्रकार प्रकट हुए हैं।

जा मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
बिन मरने कस पाइये, पूरणपरमानन्द।।

और रवीन्द्र मृत्यु का दर्शन कर प्रफुल्ल बदन से उनका आवाहन कर पुकार उठते हैं—

सामने है शांति पारावार
बहा दो तरणी हे, कर्णधार।
होगे तुम्ही मेरे चिर स्वामी
लो उठ मुझे अपनी गोद में ले लो,
असीम के पथ में जलने दो
ज्योति ध्रुव तारा की।

यह गीत कविगुरु की इच्छानुसार उनके समाधि दिवस (7 अगस्त 1941) को शांति निकेतन में केवल प्रथम बार ही गाया गया था।

कविगुरु ने व्रज भाषा से प्रभावित हो अपने एक व्रज भाषा मिश्रित बांग्ला-गीत में मृत्यु की आरती इस प्रकार उतारी है—

मरण रे तुंहुं मम श्याम समान
मुक्ति दाता तुम्हारी क्षमा तुम्हारी दया
होगी चिर यात्रा में पाथेय मेरा।
हो जाय मर्त्य का बन्धन क्षय
विशाल विश्व ले ले मुझे गोद
में हाथ पसार कर।
मिल जाए निर्भय परिचय
महा अपरिचित का अन्तरात्मा में

वे स्वयं मृत्यु का आवाहन करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! तुम शीघ्र ही मृत्युदूत भेजो ताकि मेरी सांसारिक वासनाओं की शृंखलाएं कुछ खुल सकें—

मृत्यु के दूत को कब भेजोगे नाथ!
उन के आने पर मेरे सब द्वन्द्व मिट जाएंगे

मृत्यु के दूतों के आने पर सब अवरोध दूर हो जाएंगे।
सब शृंखलाएं स्वयं शिथिल हो जाएंगी
उनके आने के बाद कौन मुझे घर की दीवार में बन्द कर सकेगा?

विश्व के उन अनूठे कलावन्त, मृत्यु के मर्म को जाननेवाले मृत्युंजय कवि की पुण्य पावन निर्वाण तिथि पर हम उन्हीं के मृत्यु गीतों से ही उनके चरणों में अपनी तुच्छ पूजा समर्पित करते हैं।

प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि।।

प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृत है।

—सनत्सुजातीय

× × ×

सच्चा जीवन क्या है? जिसकी मृत्यु न हो। और सच्ची मृत्यु वह है जिसका पुनर्जन्म न हो।

—आद्य शंकराचार्य

रवीन्द्र साहित्य में पंचनद प्रदेश का जयगान

असीम को ससीम कर देना उतना ही अवांछनीय है जितना अनन्त ब्रह्म का सान्त जीव बन जाना, किन्तु ससीम के भीतर असीम को देख लेना उतना ही आनन्ददायक है जितना सान्त जीव में अनन्त ब्रह्म के दर्शन कर लेना। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ससीम में असीम के द्रष्टा थे, सान्त में अनन्त के दर्शन करके वे स्वयं अनादि-अनन्त बन गए थे। श्रुति भगवती कहती है, **ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**—ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही बन जाता है।

उन क्रान्तदर्शी कवि के शब्दों में—

सीमार माझे असीम तुमि,
बाजाओ आपन सूर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश,
ताइ एतो मधूर।।

—मुझ ससीम के भीतर बैठे
तुम असीम हो वंशी बजाते,
मेरे भीतर तव प्रकाश है,
तब ही इतना मीठा है।

जिस रवीन्द्रनाथ के अन्तर का नारायण जाग उठा था, जिसके चलने-फिरने, उठने-बैठने में एक ईश्वरीय तेज था, जिसके हृदय का भगवान् ही स्वयं बोलने लगा था, जो विश्वकवि के परमोच्च सिंहासन पर आसीन हुआ, जिसकी प्रतिभा के पराग से निखिल विश्व की वाटिका सुवासित हो उठी—उस कवि सम्राट के साहित्य में केवल पंजाब प्रदेश का वर्णन ढूंढ़ना सूर्य के तापमान को तुच्छ डाक्टरों के ताप-मापक यन्त्र से मापने के बराबर है।

कवीन्द्र रवीन्द्र केवल बंगाल अथवा भारत के ही कवि नहीं विश्वभर के महानतम कवि हैं। सरोजिनी नायडू ने हंगरी की राजधानी बूडापेस्ट में एक अस्पताल

में देखा कि बहुत से ऑपरेशन किए हुए मरीज अपने बिस्तरों पर लेटे हुए अपने तकिए के नीचे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक पुस्तक रखे हुए हैं जिसका हंगरी भाषा में नया-नया अनुवाद हुआ था। श्रीमती नायडू को देखने पर वे सब पुस्तक निकाल कर 'टैगोर-टैगोर' चिल्लाने लगे। सरोजिनी ने नार्वे के किसानों के पास भी टैगोर की रचनाएं देखी तथा पूर्वी अफ्रीका के जंगली लोगों से भी सुना कि धरती पर मनुष्य के रूप में एक भगवान् रहता है जिस का नाम 'टैगोर' है। जब 1914 का महायुद्ध घोषित हुआ तो फ्रांस के प्रधानमंत्री ने अपने हृदय के संक्षोभ को शान्त करने के लिए गीतांजलि को सीने से लगा लिया तथा वहाँ की एक प्रसिद्ध कवयित्री से गीतांजलि के गीतों का पाठ सुनकर उन्हें शांतिलाभ हुआ। इस प्रकार विश्व मानवता के हृदय पर जिनकी दिव्य प्रतिभा का एकछत्र साम्राज्य है, उनके साहित्य भण्डार में पंचनद प्रदेश की प्रशस्ति को प्रकाश में लाना कुछ संकुचित भाव है।

पंजाब विश्वकवि को भूल न जाए

प्रस्तुत लेख लिखने के लिये मैं इस कारण प्रेरित हुआ हूँ कि जिस रवीन्द्रनाथ की सारा विश्व आरतियाँ उतारता है और जिस रवीन्द्रनाथ ने स्वयं पंजाब की पुण्यभूमि का जयगान गाया है उसी रवीन्द्रनाथ के विषय में आज पंजाब के पढ़े-लिखे लोगों को भी बहुत कम ज्ञान है। पंजाब को कृतघ्नता के पाप से बचाने के लिए ही यह लेख है।

वेदमन्त्रों से गूंजता हुआ पंचनद प्रदेश

मनु स्मृति के अनुसार आर्यावर्त्त की सीमा उत्तर में हिमवान तथा दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक थी। इसके पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर समुद्र था। आर्य लोग इसी भूमि के निवासी थे। इसे ही सप्तसिंधु प्रदेश कहा गया। इसकी महिमा में सारा वैदिक वाङ्मय गूंज रहा है। इसके पूर्व तथा पश्चिम में समुद्र होने का अर्थ है कि पूर्व में प्रयाग से परे का उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम में राजस्थान उस समय जलमग्न थे। विन्ध्याचल से नीचे भी समुद्र था तथा दक्षिणी भारत का पठार आर्यावर्त्त से बिल्कुल पृथक् था। कई विद्वानों का मत है कि दक्षिणावर्त तो उस समय अफ्रीकी भूखण्ड के साथ जुड़ा हुआ था। बाद में कई भौगोलिक उथल-पुथलों में दक्षिणी पठार अफ्रीका से पृथक् होकर आर्यावर्त्त से जुड़ गया। इसी कारण दक्षिण में आर्य संस्कृति बाद में पहुँची तथा सारा देश भारतवर्ष बन गया। मनु काल के आर्यावर्त्त में सरस्वती और दृशद्वती के बीच का प्रदेश (आजकल का पंजाब प्रदेश) ब्रह्मावर्त कहलाता था। यही वेदों की भूमि है। सप्तसिंधु प्रदेश में भी आज के पंजाब की पांच प्रसिद्ध नदियाँ, पश्चिमोत्तर में सिन्धु नदी तथा दक्षिण में सरस्वती नदी मानी जाती है। इस प्रकार सप्तसिन्धु प्रदेश ब्रह्मावर्त से

कुछ बड़ा है। पंजाब को तथा उसी के कारण सारे भारत को यह गौरव प्राप्त है कि जब अधिकांश संसार अन्धकार के गर्त में निमग्न था, अमरीका का पता नहीं था तथा यूरोप के मनुष्य पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना नहीं सीखा, तब पंजाब में आर्य ऋषि हाथों में वेदज्ञान की मशाल लेकर सारे विश्व को प्रकाश दे रहे थे।

रवीन्द्रनाथ की पंजाब को श्रद्धांजलि

वेदमन्त्राभिगुंजरित पंजाब की धरती के प्रति अपनी श्रद्धा चढ़ाते हुए वे ऋषि-तुल्य लोकनायक रवीन्द्रनाथ गा उठे—'पंजाब भारत का वह प्रदेश, जिसके आकाश में प्रथम प्रभात का उदय हुआ, जिसके तपोवनों में सामवेद का संगीत पहले-पहल गुंजारित हुआ, जिसके वनों एवं उपवनों में मानव के प्रथम पदचाप सुने गए।'

पंजाब तथा बंगाल

पंजाब ने विश्व को ज्ञान का प्रथम आलोक वेद के रूप में दिया। सारे ऋषि आर्यावर्त्त में हुए। किन्तु जब आर्यावर्त्त पर संकट आया तो पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिए दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किए— शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिए।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, युक्तप्रांत इत्यादि के क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा इत्यादि। आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिए आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेश वास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किए। धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्वविजेता विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द पैदा किए, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र, राजा राममोहनराय तथा अलौकिक तत्त्वद्रष्टाविश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किए। प्रायः यही माना जाता था कि ऋषि केवल पंजाब ने ही पैदा किए हैं! किन्तु बंगाल ने भी ऋषि पैदा कर दिखाए। आचार्य क्षितिमोहन सेन का

कथन है कि चाहे कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने वेदों का कोई गम्भीर अध्ययन नहीं किया था फिर भी उनके अनेक गीत वेद की ऋचाओं के समान पवित्र एवं हृदयस्पर्शी हैं। गायत्री मन्त्र के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र के समान एक बार कविगुरु भी उदय होते हुए सूर्य को देख कर गीत के माध्यम से नाच उठे—

आलोकेर एइ झरना धाराए, धुइए दाओ
आमार प्रानेर मलिनता, धुइए दाओ।।

हे आलोक के झरने सूर्य! अपनी प्रकाश की धाराओं से सारे विश्व को नहला दो। हे सूर्य! हमारे हृदय की सारी मलिनता को अपनी पावन आलोकधारा से धो डालो।

इन पंक्तियों का प्रभाव गायत्री मन्त्र से कम नहीं है।

पंजाब वीर प्रदेश माना जाता है किन्तु बंगाल ने भी आधुनिक काल में रासबिहारी, खुदीराम, सुभाषचन्द्र जैसे महान् वीरों एवं क्रांतिकारियों को पैदा करके न केवल पंजाब के समकक्ष स्थान बना लिया है बल्कि सांस्कृतिक जागरण में बंगाल पंजाब से भी बाजी मार कर ले गया है।

गीता-गान का देश पंजाब

वेदों के पश्चात् उपनिषद् तथा उपनिषदों के दुग्धामृत गीता का स्थान है, यह भी पंजाब की सारे विश्व को देन है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने स्वयं लिखा है कि उपनिषद् उन के लिए प्रेरणा के महान् स्रोत रहे हैं। सारी गीतांजलि के गीत उपनिषदों के तत्त्व दर्शन से गूंज रहे हैं।

गीता सन्देश के विषय में कविगुरु लिखते हैं—'गीता में हमें निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया गया है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थ पर दृष्टि रखता है वह शेष सभी को अपने से तुच्छ मान लेता है। अतः अन्य सभी लोगों की सत्ता एवं अधिकारों का विचार रखते हुए मनुष्य को अपने आप के व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त करना होगा। व्यापक जीवन प्राप्त करने के प्रत्येक प्रयत्न की यह मांग है कि मनुष्य दान को ही लाभ माने तथा स्वार्थी न रहे।'

गुरु गोविन्दसिंह तथा बन्दा वैरागी को पुष्पांजलि

कवि-सम्राट ने पंजाब की वीरता में अनेक प्रशस्तियाँ गाई हैं। 'कथा ओ कहानी' में गुरु गोविन्द पर उन की कविता अपनी ही प्रकार की अनूठी कलाकृति है। बन्दा वैरागी का बलिदान तो अत्यन्त रोमांचकारी है—

पंचनदीर तीरे,
वेणी पाकाइया शीर

देखिते देखिते गुरुर मन्त्रे

जागिया उठेछे सिख

निर्मम निर्भीक

हजार कंठे गुरुजीर जय

ध्वनिय तुले छे दिक्

पंचनद के तीर पर

वेणी बांदे सिर पर

देखते ही देखते गुरुमंत्र से

जाग उठे हैं सिख

निर्मम निर्भीक

सहस्रों कंठों से 'गुरुजी की जय'

ध्वनि से गूंज उठी हैं दिशाएं।

वे पुनः लिखते हैं—

पंजाब आजि गरजि उठिल 'अलख निरंजन'

अर्थात् **पंजाब आज गरज उठा है**

'अलख निरंजन'।

बलिदानी वीरों का दृश्य कितना मार्मिक है—

पंचनद के तीर पर

भक्तों के देह की रक्त लहरी

मुक्त हुई क्या, रे?

लाखों वक्ष चीर

झांकता प्राण, पक्षी समान

छूटा जैसे नीड़।

ललाट पर रक्ततिलक लगाया

मां के वीर पुत्रों ने

पंचनद के तीर पर।

बन्दा बैरागी के बन्दी होने का दृश्य कितना रक्त-खौलाने वाला है—

सिंह समान जकड़े बन्धन में

बन्दा हुआ समर में बन्दी

गढ़ गुरदासपुर में
वीर सिखों के कटे मुण्ड
लटकाए भालों की नोकों पर
सम्मुख चलती मुगल सेना
उड़ाती धूलि पथ पर।
सात सौ सिख चलते पीछे
बजती लौह श्रृंखलाएं।

बन्दा के बलिदान की घड़ी रक्तस्नात है—

बन्दा की देह लगे नोचने घातक
कर संडासियां दग्ध
स्थिरता से वीर मेरा,
बिना किए एक भी कातर शब्द।
दर्शक गण ने मून्दे नयन,
सभा हुई निस्तब्ध।।

वेणी के बदले शीश कटाया

एक सिख वीर तरुसिंह के बलिदान का वर्णन कविगुरु के शब्दों में देखिए— नवाब ने बन्दी सिख तरुसिंह को सम्बोधित करते हुए कहा—'मैं तुझ को क्षमा करना चाहता हूँ। तुम महान् वीर हो अतः यदि तुम अपनी वेणी काटकर मुझे दे दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा।' तरुसिंह ने उत्तर दिया—तुम जो चाहते हो मैं तो उससे भी अधिक देने को प्रस्तुत हूँ।' तुम तो केवल वेणी चाहते हो, मैं अपना सिर भी दे रहा हूँ।'

महापुरुषों का मान

कवीन्द्र रवीन्द्र लाल-बाल-पाल की त्रिपुटी में से विपिनचन्द्र पाल के निकट संपर्क में आए थे। इसी कारण पंजाब केसरी लाला लाजपत के प्रति भी उनका सहज प्रेम का भाव था। स्वामी विवेकानन्द के तो वे प्रशंसक थे ही। विवेकानन्द से स्फूर्ति प्राप्त करने वाले (पंजाब के विवेकानन्द) स्वामी रामतीर्थ से भी कविगुरु का मिलन हुआ था। भगतसिंह बलिदान पर भी गुरुदेव को भारी ठेस लगी।

जलियांवाला बाग कांड पर कविगुरु का आक्रोश

सन् 1919 में वैशाखी के पर्व पर जब अमृतसर नगर में जलियांवाला बाग कांड हुआ तब पंजाब के रक्तपात से कवीन्द्र रवीन्द्र उद्विग्न हो उठे और उन्होंने

वायसराय को पत्र लिखकर अपनी सर की उपाधि को वापस फेंक दिया। इससे कविगुरु का पंजाब के प्रति सहज प्रेम प्रकट होता है।

जन-गण-मन-अधिनायक, जय हे!

अपने राष्ट्र गीत में कविगुरु ने देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की नामावली गिनाते हुए 'पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल बंग', गाया है। इसमें भी उन्होंने देश की परिक्रमा करते हुए सबसे प्रथम माला के सुमेरु के स्थान पर पंजाब का नाम ही लिया तथा अतिशय विनय से अन्त में बंग देश का नाम लिया।

क्या विश्वकवि के पावन जन्मोत्सव पर हम पंजाब निवासी कविगुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करेंगे?

10 मई 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

शेक्सपियर या रवीन्द्र...???

भारत के प्रथम ब्रिटिश गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने एक बार कहा था कि 'यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए और दूसरे में शेक्सपियर के साहित्य को रखा जाए और मुझसे पूछा जाए कि मैं किसे अधिक मूल्यवान समझता हूँ तो मैं भारत—जैसे विशाल देश में ब्रिटिश साम्राज्य को ठुकरा दूंगा, किंतु मैं अपने महाकवि शेक्सपियर को कभी नहीं त्यागूंगा।'

आज भारत जैसे स्वतंत्र राष्ट्र के कोटि-कोटि जनगण को इंग्लैण्ड ही नहीं, वरन् सारे विश्व को बता देना चाहिए कि यदि इंग्लैण्ड का ही नहीं, वरन् सारे संसार का साम्राज्य भी किसी तुला पर अवस्थित कर तौल दे, तो भी हम अपने महाकवि रवीन्द्र की तुलना में विश्व साम्राज्य को ठुकरा देंगे, किंतु अपने विश्वकवि रवीन्द्र को नहीं त्यागेंगे।

—प्रो. हरवंशलाल ओबराय

रवीन्द्र साहित्य मन्दिर में नटराज शंकर

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर सत्यं शिवं सुन्दरम् के अमर द्रष्टा थे। वे स्वयं भी अपने आप को लीलामय परब्रह्म का साझीदार मानते थे। वेदों में जिसे शांतं, शिवं अद्वैतम् कहकर वन्दनायें गाई गई हैं, पुराणकारों ने जिसे चन्द्र मौलेश्वर, त्रिशूल-पाणि, नीलकण्ठ भगवान् कह कर स्तवन किए हैं, कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने भी उनकी महिमा से अपनी काव्य-कीर्ति को महिमामण्डित किया है। अपनी एक अनूठी कविता में वे गा उठते हैं—

शोनो रे कविवर काछे—
रामीरे जांर अतल शान्ति,
तांहार खेला अधीर नाचे।
सृजने जांर असीम वित्त,
प्रलये तांर विलास नृत्य,
त्यागे तांर पूर्ण विकास,
अन्तर जांर पूर्ण आछे।
देशे काले मुक्त जिनि
जटाय तांरि घुर्णी जड़ाय,
देश कालेरि मंदाकिनि।
बांधन निये करेन लीला,
कखनों आंट कखन ढीला,
ग्रंथि बेंधे ग्रंथि खोलेन,
से रग तांर लओ रे चिनि।

उस विश्वकवि की शिवस्तुति का जो कुछ भावानुवाद प्रस्तुत लेखक से बन पड़ा है वह निम्नलिखित है—

सुन लो कवि के मधुर कंठ से,
शिव की महिमा अगम अपार।।

अन्तम में जिनके अगाध हैं,
शांति और लीला में नृत्य,
सृष्टि में ऐश्वर्य महा है,
और विलास प्रलय में नित्य।
पूर्ण विकास त्याग में जिनका,
जिनका अन्तर सदा प्रपूर्ण।।
सुनलो कवि के मधुर कंठ से...

देश काल से जो अतीत हैं,
उनकी जटा जूट में बंदी,
परिक्रमा करती और बहती
देश काल की मन्दाकिनी है।
बन्धन कभी तो ढीला करके,
कभी कड़ा कर, लीला करते,
वही बांधते नर ग्रन्थि में,
ग्रन्थि खोल मुक्त भी करते।
ऐसा उनका रंग जान लो,
सब रंगों से स्वयं मुक्त जो।
सुनलो कवि के मधुर कण्ठ से
शिव की महिमा अगम अपार।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के 'तपती' नामक नाटक का प्रथम दृश्य ही जालन्धर के राजा विक्रम के राज्य के एक शिव मन्दिर में निम्नलिखित शिवस्तुति से खुलता है—

सकल सरवता भस्म करो,
प्रभु क्रोध-दाह से अपने,
हे भैरव, दो शक्ति भक्त को,
सफल करो सब सपने।
दूर करो महारुद्र,
जो कुछ है मुग्ध, शुद्ध,
दूर करो भय तुच्छ मरण का,
प्राणों को दो तपने,
सफल करो सब सपने।

दुःख का मन्थन करके
पावें अमृत हम जीवन का।
आशंका कर दूर मृत्यु की
पावें तेज तपन का।
दीप्त प्रचण्ड तेज तेरा
जो झरा करे निर्झर-सा,
प्रस्तर-शृंखला तोड़,
त्याग का बहे प्रवाह प्रखर-सा।
मृत्यु-भीति को दूर करो,
प्रभु, पापों को दो खपने,
हे भैरव, दो शक्ति भक्त को,
सफल करो सब सपने।।
करुणा वरुणालय भोलेशंकर।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'बावरो रावरो नाह भवानी' गाकर भवानीपति शंकर के बावलेपन तथा भोलेपन की व्याम स्तुति की। कविगुरु रवीन्द्र भी भोले बाबा के यश में कहते हैं—

भोलानाथ, जो शास्त्रों में आनंदमय कहे जाते हैं, वे सभी देवताओं में वैसे ही पृथक् हैं। उसी पागल दिगंबर को मैं आज के इस धुले हुए नीले आकाश की फैली हुई धूप में देख रहा हूँ। इस निबिट मध्याह्न के हृत-पिंड में उनका डिम्-डिम् डमरु बज रहा है। आज मृत्यु की उल्लंग शुभ्रमूर्ति इस कर्म निरत संसार के मध्यभाग में कैसे निस्तब्ध भाव से खड़ी है। सुंदर शान्तिछवि है भोलानाथ! मैं जानता हूँ तुम अद्‌भुत हो। जीवन के क्षण-क्षण में अद्‌भुत रूप से ही तुम अपनी भीख की झोंल लेकर खड़े हो। तुमने एकदम हिसाब-किताब को नष्ट निश्चित कर दिया है। तुम्हारे नन्दी भृंगी के साथ मेरा परिचय है। आज उन लोगों ने तुम्हारा भोग का प्रसाद मुझे एक बूंद भी नहीं दिया है, यह मैं नहीं कह सकता—इससे मुझे एक नशा हो गया है। सब अस्त-व्यस्त हो गया है। आज मेरा कुछ भी व्यवस्थित नहीं है।

भस्मांग राग का लोकोत्तर आनन्द

सुख एवं आनन्द का अन्तर खोलते हुए रवीन्द्रनाथ शिव के धूलि मर्दन एवं भस्मी रमाने में एक अलौकिक रहस्य खोजते हैं—

'मैं जानता हूँ, सुख प्रतिदिन की सामग्री है, आनन्द प्रतिदिन के अतीत हैं। सुख शरीर में कहीं धूल लग जाने की आशंका से संकुचित रहता है। आनन्द धूल में लोट-पोट हो कर निखिल विश्व के साथ अपना व्यवधान तोड़-फोड़ कर

चूर-मार कर देता है—इसी कारण सुख के लिए धूल हेय है, आनन्द के लिए धूल भूषण है। सुख कुछ खो जाने की आशंका से डरा हुआ रहता है। आनन्द यथासर्वस्व वितरण कर के परितृप्त रहता है। इस कारण सुख के लिए रिक्तता, दारिद्र्य है। आनन्द के लिए दरिद्रता ही ऐश्वर्य है। सुख व्यवस्था के बन्धनों में अपनी श्री मात्र की सतर्कता के साथ रहा करता है। इसलिए आनन्द संहार की मूर्ति में अपने सौन्दर्य को उदार भाव से व्यक्त करता है। सुख बाहर के नियमों से बद्ध है। आनन्द उस बन्धन को छिन्न-भिन्न करके अपने नियमों को आप ही बना लेता है। सुख सुधा मात्र के लिए ताकता हुआ बैठा रहता है। आनन्द दुःख के विष को अनायास ही हजम कर जाता है। इसलिए केवल अच्छाई की ही तरफ सुख का पक्षपात रहता है। और आनन्द के लिए भला-बुरा दोनों ही समान है।

प्रतिभा एवं पागलपन दोनों के प्रेरक : श्मशान विहारी शिव

कवीन्द्र रवीन्द्र के मत में विचित्र वेशधारी, श्मशान विहारी शिव के पागलपन में ही सभी रूढ़ियों को नष्ट करने वाली नवीनता, मौलिकता एवं प्रतिभा की मूल प्रेरणा है। अपनी कलारुचिर शैली में वे कहते हैं—

'इस सृष्टि में एक पागल मौजूद है जो कल हमारी कल्पना के बहिर्भूत है उन्हें वे ही आप ही आप पहुँचा देते हैं। वे हैं केन्द्रातिम, 'सेन्ट्रिफ्यूगल'। वे केवल नियमों को बाहर की तरफ खींच रहे हैं। नियमों के देवता संसार के सभी मार्गों को परिपूर्ण चक्र-मार्ग बना देने की चेष्टा कर रहे हैं और यह पागल उन्हें बटोर कर कुण्डली के आकार में परिणत कर रहे हैं। यह पागल अपनी मौज से सर्पों के वंश में पक्षी, और बन्दरों के वंश में मनुष्य उद्भावित करा रहे हैं। जो हो चुका है जो मौजूद है, उसको ही चिर-स्थायी रूप से बचा रखने के लिए संसार की एक विषम चेष्टा चल रही है ये उस को छार-खार करके, जो नहीं है उसके ही लिए मार्ग साफ कर रहे हैं। इनके हाथ में बांसुरी नहीं है, सामंजस्य का सुर इनका नहीं है, पिनाक झंकृत हो जाता है, विधिविहित यज्ञ नष्ट हो जाता है और कहाँ से एक अपूर्वता आकार छेंक बैठती है। पागलपन भी इनकी ही कीर्ति है और प्रतिभा भी इनकी ही कीर्ति है। इनके खींचने से जिसका तार टूट जाता है वह हो जाता है उन्माद और जिसका तार अश्रुतपूर्व सुर से बज उठता है वह हो जाता है प्रतिभावान।'

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्यु

शंकर एवं प्रलयंकर की एकता का दिग्दर्शन कराते हुए कविगुरु साक्षात् ऋषिवाणी में कह उठते हैं—

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मैदेवाय हविषा विधेम

'अमृत जिसकी छाया है, मृत्यु भी उसी की छाया है, उसके सिवा और किस देवता की पूजा करें।'

वे अन्यत्र लिखते हैं—'हे पिता, तुम ही दुःख हो, तुम ही विपद् हो, हे माता, तुम ही मृत्यु हो, तुम ही भय हो। तुम ही 'भयानां भयं भीषणं भीषणानां' हो।...असत्य जो अपने को दग्ध करके तब कहीं सत्य में उज्ज्वल हो उठता है, अन्धकार जो अपने को विसर्जित करके तब कहीं ज्योति में परिपूर्ण हो उठता है, और मृत्यु जो अपने को विदीर्ण करके तब कहीं अमृत में प्रस्फुटित हो उठती है।...इसीलिए ऋषियों ने तुम्हें करुणामय करके व्यर्थ सम्बोधित नहीं किया। इसी लिए ऋषियों ने तुम्हें कहा है—'हे रुद्र, तुम्हारा जो प्रसन्नमुख है उसके द्वारा तुम हमारी रक्षा करो।'

प्रलयंकर का आशीर्वाद

कविगुरु के प्रार्थना प्रवण प्राण पुकार उठते हैं—'हे भयंकर, हे प्रलयंकर, हे शंकर, हे मयस्कर, हे पिता, हे बन्धु, तुम हमें आशीर्वाद दो कि हममें उत्तरोत्तर ऐसी शक्ति विकसित होती रहे जिससे कि हम अपने अन्तःकरण की सम्पूर्ण जाग्रत शक्ति से, उद्यत चेष्टा से, अपरानित चित्त से, भय, दुःख और मृत्यु से तुम्हें सम्पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकें, किसी भी अवस्था में कुण्ठित और अभिभूत न हों।'

रुद्र देवता का प्रसन्नमुख

अपने 'प्रार्थना' नामक आत्म रसाप्लावित प्रबन्ध में कविगुरु ने ऋषि अन्तरात्मा की प्रार्थना का सन्धान पा लिया है। वे कहते हैं कि हमारी एकमात्र प्रार्थना है, और वह है—

असतो मा सद्गमय, तमसो मा
ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।
आविराधर्स रुधि। रुद्र यस्ते दक्षिणं
मुखं, तेन मा पाहि नित्यम्।

'असत्य से मुझे सत्य में ले जाओ, अन्धकार से मुझे ज्योति में ले जाओ, मृत्यु से मुझे अमृत में ले जाओ। हे स्वप्रकाश, मेरे निकट प्रकाशित होओ। रुद्र, तुम्हारा जो प्रसन्नमुख है उसके द्वारा तुम सदा सर्वदा रक्षा करो।'

भेद में अभेद—मंगलप्रद शिवतत्त्व

जहाँ कविगुरु शिव को सभी प्रकार की रूढ़ियों को भंग करने वाले, मर्यादा-मर्दन महेश्वर मानते हैं वहाँ वे उन्हें सब प्रकार के भेदों में अभेदतत्त्व के रूप में सब को संयम नियम में रखने वाले सबके नियामक भी मानते हैं—

'भेद के द्वारा बहु का जन्म होता है किन्तु मेल के द्वारा बहु की रक्षा होती है। जहाँ एक को अपना अस्तित्व सुरक्षित रखना है, वहाँ प्रत्येक को अपने परिमाण को ठीक रखकर अपने वजन को बचाकर चलना पड़ता है। जगत् में जो चीजें हैं उनको हम उनके रूपों में पाते हैं, उनका जो परिणाम है उसी में संयम की रक्षा की गई है, संयम मंगलप्रद है, यही संयम सुन्दर है। शिव तो यही हैं—संयमी हैं।'

वे अन्यत्र शान्तं शिवं अद्वैतम् की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

'शिवम्' केवल अपने आप में ही स्थिर रहें तो उन्हें शिव ही नहीं कहा जा सकता। संसार में चेष्टा और दुःख की कोई सीमा नहीं। इस कर्म-क्लेश में ही अमोघ मंगल के द्वारा वे अपना शिव स्वरूप प्रकाशित कर रहे हैं। मंगल संसार के समस्त दुःख ताप को अतिक्रम किए हुए है, और इसलिए वे धर्म हैं। नहीं तो उनका प्रकाश कहाँ है?'

करालं महाकाल कालं कृपालम्

भगवान् रुद्र का भयंकर विकराल स्वरूप भी, जो सांसारिकों के सुखसपनों पर उल्कापात के सदृश है, कविगुरु के लिए वरेण्य हो उठा है। कविप्रवर की रहस्यदृष्टि ने शिव के भीम भयंकर रूप में भी नवनवोन्मेषिनी लीला का कौतुक देखा है।

'केवल पागल ही नहीं, केवल प्रतिभावान ही नहीं, हमारी प्रतिदिन की एकरंगी तुच्छता में, अकस्मात् 'भयंकर' अपना जलता हुआ जय पुंज लिए हुए प्रकट हो जाता है। वह भयंकर प्रकृति में अप्रत्याशित उत्थान, और मनुष्यों में एक असाधारण पाप के आकार में जाग उठता है। तब कितने ही सुखमिलन का जाल नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, कितने ही हृदयों का संबंध छार-खार हो जाता है। हे रुद्र! तुम्हारे ललाट से धधकती हुई अग्निशिखा के स्फुलिंग मात्र से अन्धेरे में गृह का जो प्रदीप जल उठता है, उसी शिखा से लोकालयों में, सहस्रों की हाहाध्वशीथ से निर्णय रात्रि में गृहदाह उपस्थित हो जाता है। हाय शम्भु! तुम्हारे नृत्य में तुम्हारे दायें और बायें पैरों के उठने-गिरने से संसार में महापुरुष और महापाप उत्क्षिप्त हो उठते हैं। संसार के ऊपर प्रतिदिन के जड़ हस्तक्षेप से जो एक सामान्यता का आवरण गिर पड़ता है; भले-बुरे दोनों के ही प्रबल आघात से तुम उसको छिन्न-विच्छिन्न करते रहते हो और प्राणों के प्रवाह को अप्रत्याशित उत्तेजना से क्रमागत तरंगित करके शक्ति की नव-नव लीलाओं और सृष्टि की नव-नव मूर्तियों को प्रकट कर देते हो।

मृत्युदेवता का रहस्यरूप

भगवान् शंकर मृत्यु के देवता, संहार के स्वामी माने जाते हैं। कविगुरु रवीन्द्र नाथ का मत है कि शंकर के इस प्रलयंकर रूप को पहचानने में ही मुक्ति का रहस्य है। कवीन्द्र के शब्दों में—'हमारे इस पागल देवता का आविर्भाव रह-रह

कर होता है ऐसी बात नहीं है। सृष्टि में उसका पागलपन हरदम लगा ही हुआ है। हमें रह-रह कर केवल उसका परिचय ही प्राप्त होता है। प्रतिक्षण ही जीवन को मृत्यु नवीन बना रही है भले को बुरे की तुलना द्वारा उज्ज्वल बना रही है, तुच्छ को आकल्पनिक मूल्यवान बना रही है। जब हम उसका परिचय प्राप्त कर लेते हैं तभी रूप में अपरूप, बंधन में मुक्ति का प्रकाश हमारे सामने जाग उठता है।'

मृत्युंजय महादेव की जय

वेद के महामृत्युंजय मन्त्र, त्र्यम्बकं यजामहे...में जिस त्र्यम्बक रुद्र का स्तवन किया गया है उसी रुद्र को सम्बोधन कर कविगुरु प्रार्थना की विनीत वाणी में पुकार उठते हैं—तुम्हारे इस रुद्र आनन्द में योग देने में मेरा भयभीत हृदय पराङ्मुख न होने पावे। संसार के रक्ताकाश के बीच तुम्हारा सूर्यकिरणों से चमकता हुआ तीसरा नेत्र ध्रुवज्योति से मेरे अन्तर के अन्तर को उद्भासित कर दे। नृत्य करो हे उन्माद नृत्य करो! उस नृत्य के चक्कर के वेग से आकाश की एक लाख करोड़ योजनव्यापी चमकती हुई नीहारिका जब चक्कर लगाती रहेगी तब मेरे वक्ष में कहीं भय का आक्षेप इस रुद्र संगीत का ताल काट कर न चला जाय। हे मृत्युंजय! हमारे समस्त भलों और समस्त बुरों के बीच तुम्हारी ही जय हो।

शिव के चरणों में भारत का नमन

'प्राचीन भारत' नामक एक तत्त्वगुम्फित निबन्ध में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ गद्यगीत में गा उठते हैं—'हे विधाता! तुम अपने उस अनन्धकार लोक के प्रति दीन भारत का नतमस्तक उठा दो।

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न
सन्त चासञ्छिव एव केवलः।

'जब तुम्हारा वह तमस से नितान्त मुक्त आलोक आविर्भूत होता है तब कहाँ तो दिन, कहाँ रात, कहाँ सत्, कहाँ असत्, तब 'शिव एव केवलः' केवल शिव, केवल मंगल है।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च,
नमः शंकराय च मयस्कराय च,
नमः शिवाय च शिवतराय च।

'हे शंकर, हे मयोभव, तुम्हें नमस्कार है। हे शंकर, हे मयस्कर, तुम्हें नमस्कार है, हे शिव, हे शिवतर, तुम्हें नमस्कार है।'

वासन्ती गीतों के अमरगायक—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं ही साहित्य की वासन्ती सुषमा के एक अमर वरदान थे। वे साहित्य के उपवन में मधु मधुरिमा का सौंदर्य एवं संगीत लेकर आने वाले स्वयं ऋतुराज वसन्त थे। भारतीय साहित्य के इस महान् सरोवर में अपनी अपूर्व छवि से खिलने वाले ऐसे अनूठे शत-कमल थे जिसके पावन पराग से केवल भारत ही नहीं वरन् विश्व भर का दिग्दिगन्त सुवासित हो उठा।

माधुर्य का मृत्युंजय कवि रवीन्द्र वसन्त ऋतु के अभिनन्दन में गा उठता है—

एशो आमार वसन्त-
आजी दखिन द्वार खोला
दिव हृदय-दोलाय दोला,
एशो वन मल्लिका कुंजे,
ऐशो हे, ऐशो हे, ऐशो हे।
मृदु मधुर मदिर ऐशो,
पागल हाओयार देशे,
तोमार उतला उत्तरीय तुमि-
आकाशे उड़ाये दियो,
एशो हे, एशो हे, एशो हे,
आयार वसन्त एशो हे!
ऐसा है हमारा प्यारा वसन्त
आज दक्षिण पवन के लिये द्वार खुला
दिव हृदय आनन्द में झूला
मल्लिका कुंज में माधुर्य छा गया
ऐसा है हमारा प्यारा वसन्त

यह मृदु, मधुर मदिर वसन्त,
सबको पागल बनाता है।
हे वसन्त तुम्हारा उत्तरीय
उड़ रहा गगन में मधुर मुक्त,
आओ हे प्यारे वसन्त आओ।।

माधवी वसन्त के आगमन को धरती का चिरभिलषित सौभाग्य मान कर कवि अपनी वाणी की वंशी में तान भरता है—

कत लक्ष वरषेर तपस्यार फले, धरणीर तले,
फुटियाछे आजि ए माधवी, ए आनन्द छवि,
युगे युगे ढाका छिल अलक्ष्येर, वृक्षेर आंचले।।
न जाने कितने लक्ष वर्ष के तप से,
पृथ्वी पर माधव ऋतु यह—आज खिली है,
युग युग से जो आनन्द छवि—छिपी पड़ी थी।
वृक्षों के नीचे, आज पुनः प्रकटी है।।

सुगन्धि एवं सुवास की इस मधुऋतु के स्वागत में कवि स्वागत गीत गुनगुनाता है—

आओ आओ वसन्त धरा तले
आओ अविरल, अविकल तान,
आओ नव प्राण, नव गान,
आओ सुरभित अलस समीरण
आओ विश्व के अन्तर,
अन्तर - निभृत चेतन।
आओ नव उल्लास हिलोल,
आओ आनन्द छन्द हिन्दोल।

कवि का यह अमर अभिनन्दन गीत अनेक स्वरों में ध्वनित होता है—

हे वसन्त, हे प्रथम फाल्गुन!
अयुत वत्सर पूर्ण एक दिन
नन्दन वन का खुला था दक्षिणद्वार
और अचानक मत्त वेग से आकर
ठहर गये तुम मानव की कुटिया में।

तरुण धरा की प्रथम माधवी पर जो
डूब गये थे पुष्प तप्त किरणों की
स्वर्णिम मदिरा में, उन्हीं फूलों को
पुष्प वर्ष प्रतिवर्ष नई भूषा के,
आंचल में श्रृंगार किये लाते हो।
जग के बीते युग की विस्मृत गाथा
अंकित है उन फूलों की कलियों पर,
उनकी मीठी गन्ध में मिश्रित है सच,
माधुर्य लोक लोकान्तर के उपवन का।

रहस्यदर्शी कवि वसन्त के आगमन में अपने प्रियतम के आगमन का सन्देश पाता है—

आज वसन्त द्वार पर आया।
अवगुंठित कुंठित जीवन में-
जाय न वह ठुकराया।
आज खोल दो हृदय पद्म दल,
भूलो निज-पर-भाव अंच चल।
गीत मुखर इस गगन प्रांत में,
उठें गन्ध की लहरें विह्वल।
दिशाहीन त्रिभुवन में कर दो-
मधुर माधुरी छाया।।

रवीन्द्र का समूचा जीवन एक अनवरत वसन्त दर्शन है, एक मधुर फूलों की सैर है—कवि गाता है—

फूल चुनने के लिए संगृहीत करने
के लिए मत ठहर जाओ, चलो आगे
सारी यात्रा भर तुम्हें हंसते हुए
खिलते हुए,
मधु गन्ध बिखराते हुए पंकज मिलेंगे।

वे प्रियतम को पुकारते हैं कि आज की वसन्त निशा में मेरी तुम्हें मिलने की तृषा तीव्रतम हो उठी है। अपने सुधा भरे गीत को गाते हुए आओ।

चित पिपासित रे, गीत सुधातरे
आजिवसन्त निशा, आजि अनन्त, तृषा,

आजि जागृत प्रान
तृषित चकोर समान,
गीत सुधार तरे।।

कवि के जीवन की बगिया में वसन्त के पदार्पण से तो सारा संसार आनन्द यज्ञ बन जाता है। उस रहस्यदर्शी गायक की स्वर लहरी गूंज उठती है—

जगते आनन्द यज्ञे आमार निमन्त्रण
धन्यहल धन्यहल मानव जीवन।
—जगती के आनन्द यज्ञ में
अपना आज निमन्त्रण पाकर
धन्य धन्य हो उठा है मेरा
मानव का यह सुन्दर जीवन।

तोमार यज्ञे दिएछ भार,
बाजाइ आमि बांशि।
गाने गाने गेंथे बेडाई,
प्राणेर कान्ना हासि।।

—इस आनन्द यज्ञ में मुझ को
काम मिला वंशी वादन का,
गीत गीत में गूंथ दिया है,
स्वर प्राणों के हास रुदन का।

भगवान् कृष्ण ने 'ऋतूनां कुसुमाकरः' कहकर वसन्त को स्वयं ईश्वर का ही रूप कहा। कविगुरु उस अनन्त को पाकर गीत के माध्यम से नृत्य करने लगते हैं—

इस ज्योति समुद्र में,
जो शतदल कमल है
उसका मकरन्द मैंने पिया,
मैं धन्य हो गया!
अब मैं जान गया,
किसके लिए थे ये आंसू
यह जागरण धन्य है
यह क्रन्दन धन्य है
और, धन्य है यह वेदन।

वसन्त की लौकिक सुषमा में भी कवि ने रहस्य दर्शन किया है। एक नववधू को वसन्त की मंजरी समझ कवि ने सारी प्रकृति को अर्घ्य बनाकर उसे चढ़ा दिया है—

अहो वधु सुन्दरी, तुम मधु मंजरी, पुलकित चम्पा गहो अभिनन्दन।
पल्लव पात्रे फागुन रात्रे मुकुलित मल्लिका मालय निबन्धन, गहो अभिनन्दन।

वसन्त ऋतु के चतुर्दिक सौंदर्य का पान कर कवि की हृदयवीणा ध्वनित हो उठती है—

आज हृदय पुलकित,
अन्तर तर विलसित,
आज स्वयं उच्छवसित लय तार स्वर
अहम् अमृत निर्झर।

वसन्त की वासन्ती सुषमा में मातृभूमि के अनन्त प्यार का सन्देश पाकर कविगुरु की आकांक्षा मुखर हो उठती है—

'मेरे हृदय को सुगन्धि का श्रेष्ठतम उपहार भारत माता के अपने ही फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि दुनिया भर में कहाँ अन्यत्र चन्द्रमा इतने माधुर्य से चमकता है जो मेरे संपूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौंदर्य से आप्लावित कर सके।...मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अन्तरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा यही आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिरनिद्रा में सो जाने से पूर्व भी इसी धरती का प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।'

सारा विश्व भारत को रवीन्द्रनाथ जैसे दिव्य ऋषि तुल्य कलावन्तों के माध्यम से ही पहचानता है। यदि हम रवीन्द्र को भुला देवें तो सारा विश्व हमें भुला देगा।

—प्रो. ओबराय

× × ×

मर्यादा की सीमा में निभना और निभाना तप है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

रवीन्द्र के काव्य मंदिर में श्रावण पूर्णिमा का रजत प्रकाश

रक्षाबंधन का कच्चा सूत का धागा भारत की चिरन्तन आत्मा का सजीव प्रतीक है। यह शक्ति को शील का कवच पहनाने वाला दिव्य रक्षा-सूत्र है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारतीय संस्कृति के महानतम व्याख्याताओं में से एक थे। भारतीय जनजीवन का कदाचित ही कोई अंग हो जिसका यत्किंचित् आख्यान कविगुरु ने अपनी कलारुचिर प्रतिभा के रंगीन प्रकाश में न किया हो।

प्रकृति का रसवर्षण पर्व

रक्षाबंधन का पर्व श्रावण पूर्णिमा के दिन आता है। अतः श्रावणी नाम से प्रख्यात है। श्रावण पावस ऋतु का प्यारा मास है। भारतीय जनजीवन सावन के मधुर गीतों तथा हृदयहारी झूलों से रंगीन हो उठा है। श्रवण नक्षत्र, पितृभक्त बालक श्रवण तथा वेदों के श्रवण (सुनने) से संबद्ध श्रावण मास गगनमण्डल से सहस्र धाराओं में होने वाले रसवर्षण के लिए भी सुप्रसिद्ध है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपनी रसवन्ती कला का अर्घ्य श्रावण पूर्णिमा के महापर्व को चढ़ाया है—

आज श्रावणेर पूर्णिमाते की एनेछिस बल्।
हासिर कानाय कानाय भरा नयनेर जल।।
बादल-हाओयार दीर्घश्वासे यूथीवनेर वेदन आसे-
फुल-फोटानोर खेलाय केन फुल-झरानोर छल।
ओ तुई की एनेछिस बल।।

ओगो की आवेश हेरि चांदेर चोखे,
फेरे से कोन स्वप्न-लोके।
मन बसे रय पथेर धारे-जाने ना से पाले कारे-

आसा-याओयार आभास वातासे चंचोल।
ओ तुई की एनेछिस बल्।।

अर्थात्—

आज श्रावण पूर्णिमा के पुण्य दिन
बोल तू मेरे मीत तू लाया है क्या?
क्या हंसी के पात्र में छलछल भरा
लोचनों का अश्रुजल लाया है तू?
मेघ मन्थर पवन के निश्वास में
तू जीवन की वेदना का राग है।
पुष्प-प्रफुल्ल खेल में फिर आज क्यों
हो रहा है छल सुमन झटकाने का?
आज श्रावण पूर्णिमा के पुण्य दिन
भेंट मेरे मीत तू लाया है क्या?

चाँद की आंखों में देखो क्या मधुर
देखता हूं मैं नशीली चाँदनी।
जाने क्या किन स्वप्नलोकों में शशि
आज खोया-खोया-सा है घूमता।
मेरा मन पथ के किनारे बैठ कर
जाने क्या किस मीत को कब पाएगा?
किन्तु चंचल पवन में है तैरता,
मीत-गमनागमन का संकेत है।
आज श्रावण पूर्णिमा के पुण्य दिन,
भेंट मेरे मीत तू लाया है क्या?

उक्त कविता में कवि ने प्रकृति की पावस लीला के रंगीन पर्दे के पीछे छिपे लीलामय पुरुष को श्रावण पूर्णिमा की चन्द्र धवल चंद्रिका में पुकारा है तथा उसके संग रहस्यमय प्रेम लीला का नृत्यगान किया है।

हृदयों को बांधने वाली राखी की तारें

बीसवीं शती के प्रथम चरण में ही बंगदेश क्रांति का अग्रदूत बन कर देश के समक्ष खड़ा हुआ। बंकिमचन्द्र के वन्देमातरम्, योगीराज अरविंद के स्फुलिंगवर्षी-लेखों, सुरेन्द्र बेनर्जी एवं विपिनचन्द्रपाल के अग्निमुखी भाषणों से ब्रिटिश

नौकरशाही का कलेजा कांप उठा। उस समय कविगुरु अपने कवि के गगनचुम्बी भुवनों को त्यागकर धरती पर उतर आए और उन्होंने अपनी मातृभूमि के प्रेम से आप्लावित होकर देशभक्ति के अनेक गीत रचे।

1905 में लार्ड कर्जन ने बंगाल के क्रांतिवाद का गला घोंटने के लिए बंगाल के विभाजन का निश्चय किया। कविगुरु ने इसे अपने स्वाभिमान के लिए चुनौती समझा तथा वे शान्त प्रकृति एकान्तप्रिय कवि अब जनगण के हृदय में प्राणचैतन्य फूंकते हुए गाने लगे—

आमार सोनार बांग्ला, आमि तोमाय भालो बासि।
चिर दिन तोमार आकाश, तोमार वातास, आमार प्राणे बाजाय बांसि
तोमार एइ से वाघरे शिशु काल काटित रे,
तोमारि धुला माटि अङ्गे मसित धन्य जीवन मानि।
तुई दिन फुराले सन्ध्याकाले की दीप ज्वालिस घरे,
भरि हाय, हाय रे...
तरवन खेलाधुला सकल फेले तोमार कोले छुटे आसि।।
ओ मा तोर चरणेते दिलेम एइ माथा पेते—
दे गो तोर पायेर धुला से ये आमार माथार मानिक हबे
ओ मा, गरिबेर धन जा आछे ताइ-दिब चरण तले,
भरि हाय, हाय रे—
आमि परेर घरे किनब न आर भूषण ब'ते गलार फांसि।।
आमार सोनार बांग्ला, आमि तोमाय भालो बासि।।

अर्थात्—

हे स्वर्ण भूमि बंगाल देश मैं तुझ पर जाऊं बलिहारी।
चिरदिन से पवन गगन तेरे प्राणों में वंशी बजा रहे।
तेरे क्रीडागृह में बचपन और शैशव के मृदु क्षण बीते,
तेरी धूलि से अंग पोत मैं धन्य मानता जीवन को।
संध्या वेला में गृह देहली पर कैसा दीप जलाती तू!!
बलि बलि जाऊं मैं खेल-त्याग तव गोदी में दौड़ा आता।
हे स्वर्ण भूमि बंगाल देश...
हे माता तेरे चरणों में मैंने निज माथा झुका दिया,
निज चरणों की धूलि दे दो तह माणिक हो मेरे शिर का,
हे माता, मुझ निर्धन का जो कुछ धन सब तव चरणों पर है,

बलि जाऊं, पर परवशता की फांसी को भूषण न मानूं।
हे स्वर्णभूमि बंगाल देश मैं तुझ पर जाऊं बलिहारी।

कवीन्द्र रवीन्द्र का यह गीत कोटि-कोटि देशवासियों की हृदयवीणा से प्रतिध्वनि हो गया तथा बंगवासियों के लिए तो जीवन मंत्र बन गया।

कविगुरु कोलकाता महानगरी में एक दिन जुलूस के मुखिया बने। मस्ती से गाते जाते—

बांग्लार माटी, बांग्लार जल,
पुन्न होक पुन्न होक, ए भगवान।

—हे भगवान्! हमारे लिए बंगाल की मिट्टी और बंगाल का जल पुण्य-पावन हो।

देश की धूलि का तिलक करते हुए कवि गाते हैं—

ओ आमार देशेर माटी, तोमार परे ठेकाइ माथा।
तोमाते विश्व मयीर, तोमाते विश्व मायेर आंचल पाता।।
तुमि मिशेछ मोर देहेर सने,
तुमि मिलेछ मोर प्राण मने,
तोमार ओइ श्यामल बरन कोमल मूर्ति गर्मे गाँथा।।

ओ मेरे देश की धूल मैं तुझ पर सादर माथा टिकाता हूँ।
हे विश्वमयी, तुझ में फैला है विश्व माया का शुचि अंचल।
तुम घुली मिली मेरे तन में और समा गई तन प्राणों में
वह श्यामवर्ण कोमल स्वरूप अन्तरतम में है गुंथा हुआ।
ओ मेरे देश की धूल मैं तुझ पर सादर माथा टिकाता हूँ।।

विधि के अटूट बन्धन

रक्षाबन्धन का पर्व प्रेम के दिव्य बंधन का परिचायक है। इस पुण्य व्रत में विधाता का शिव संकल्प भी निहित है। कविगुरु ने बंगभंग के पापपूर्ण कुचक्र को ध्वस्त करने के लिए सन् 1905 के रक्षाबन्धन पर्व पर समूचे बंगदेश का आह्वान किया तथा उन्हें आदेश दिया कि वे कोट्यावधि संख्या में परस्पर गले मिलकर राखियाँ बांधें तथा राजशक्ति को राखी की प्रेमशक्ति से परास्त कर दें। कवि ने अत्याचारी शासन को ललकारते हुए गाया—

विधिर बाँधन काटबे तुमि एमन शक्तिमान-
तुमि कि एमन शक्तिमान।

आमादेर भाङगगड़ा तोमार हाते एमन अभिमान—
तोमादेर एमनि अभिमान।।
चिरदिन टानबे पिछे, राखबे नीचे-
एत बल नाई रे तोमार, सबे ना सेई टान।।
शासने यतइ घेर' आछे बल दुर्बलेर ओ,
हओ-ना यतइ बड़ो आछेन भगवान।
आमादेर शक्ति गेहे तोराओ बांचबि ने रे,
बोझा तोर भारी हलेई डुबबे तरीरवान।।

अर्थात्—

तुम विधि के बंधन काट सको, क्या तुम ऐसे हो शक्तिमान?
क्या तुम इतने हो शक्तिमान?
निर्माण-नाश तवहाथों में क्या तुम को यह मिथ्याभिमान?
ऐसा घमण्ड, ऐसा है मान?
तुम हमें सदा पीछे खींचो, और दबा सको पग के नीचे?
रे तुम में नहीं इतना है बल!
इतना खिंचाव है असहनीय।।
शासन बल से चाहे जितना, घेरो दुर्बल में भी बल है।
चाहे कितने भी बड़े बनो, भगवान सदा है विद्यमान।
हम लोगों की शक्ति को मार कर स्वयं बचोगे नहीं तुम्हीं।
यह पाप की नैया डूब जायगी, बोझ के भारी होते ही।

रवीन्द्र की घोषणा के अनुकूल ब्रिटिश शासन की पाप नैया सचमुच डूब गई तथा भारत स्वतंत्र हुआ। उस समय भी रक्षाबंधन की पवित्र धर्मशक्ति ने पापी राजशक्ति पर विजय पाई थी तथा भारत एवं भारतीय संस्कृति के पुनीत पर्व रक्षाबंधन के गौरव की रक्षा हुई।

आज पुनः रवीन्द्रनाथ का प्राणप्यारा देश खण्डित है। न केवल बंगाल ही खण्डशः विभाजित है वरन् रवीन्द्रनाथ के असंख्य गीतों की आराध्या 'भुवनमन-मोहिनी भारत माता' भी पंजाब सीमान्त, बलोचिस्तान, बंगाल प्रभृति अंगों के काटे जाने से लहूलुहान पड़ी है। चीनी दरिन्दों ने इसी शस्य श्यामला भारत धरणी के 14 हजार वर्गमील क्षेत्र को अपने अत्याचारी पांवों के नीचे दबा रखा है, जिसके एक-एक धूलि कण को रवीन्द्रनाथ अपने विश्ववंदित मस्तक का 'माथार मानिक' अर्थात् मुकुटमणि मानते थे। जब आज के कटे-फटे पंजाब में पुनः कुछ

तत्त्व विभाजन एवं खण्डन के राग आलाप रहे हैं क्या हम रक्षाबंधन का पुनीत प्रेम संदेश सुनेंगे? क्या जिन्हें विधाता ने एक बनाया है उन्हें कोई मानव तोड़ सकेगा? क्या हम पुनः देश के क्षतविक्षत चित्र को बदल कर इस देववंदित भूमि को पुनः अखण्ड एवं अविनश्वर गौरव की स्वामिनी बनाने का शिव-संकल्प राखी के पुनीत पर्व पर करेंगे?

विश्व मानवता का इतिहास तो अत्यधिक पुरातन है किन्तु मनुष्य के दुःखों के कारणों में बुद्धि का इतिहास तो अधिकाधिक 200 वर्षों का ही है। आधुनिक मनीषा—अर्नाल्ड टायनबी, आलविन टाफलर आदि ने वर्तमान विज्ञान के संदर्भ सहित विश्व के विभिन्न दर्शनों का गहन अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला है कि विश्व की समस्याओं का समाधान, सुख का मार्ग भारत के पास है। भारत की चारित्रिक विशेषता का वर्णन करते हुए कहा गया है—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतोहि कर्म भूरेषा ह्यतोऽन्य भोगभूमयः।।

अर्थात् विश्व में भारत भूमि ही श्रेष्ठ है क्योंकि अन्य देश भोगभूमियां हैं।

× × ×

प्रत्येक राष्ट्र का एक प्राण केन्द्र होता है और उसी के आधार पर उस राष्ट्र की संरचना और पुनर्जागरण हो सकता है। भारत के लिए यह प्राण केन्द्र धर्म है। देश के पतन का कारण यथार्थ धर्म की शिथिलता है। धर्म भारत का मेरुदण्ड है। इस मेरुदण्ड को ही मजबूत बनाये रखने में भारत का अस्तित्व एवं उन्नति सुनिश्चित है। धर्म मतवाद या बौद्धिक तर्क नहीं अपितु आत्मसाक्षात्कार ही धर्म है, अन्तर्निहित देवत्व का विकास ही धर्म है, शिवज्ञान से जीव सेवा ही धर्म है।

—**स्वामी विवेकानन्द**

शरद पूर्णिमा के पावन आलोक में वाल्मीकि तथा रवीन्द्र

शरद पूर्णिमा के पुण्य पावन कौमुदी पर्व का मुख समुज्ज्वल करने वाले अनेकानेक महत्त्वों में से सर्वाधिक गरिमा मण्डित घटना है। इसी ज्योत्स्ना पर्व पर आदिकवि वाल्मीकि के रूप में धरा पर एक दिव्य ज्योति का सुगम अवतरण। सौभाग्य से भारत में काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द की जो सुमधुर रागिनी आदिकवि के मुख से निसृत हुई वह वाल्मीकि से रवीन्द्र तक अविछिन्न ही प्रवाहित होती चली आई है। महर्षि वाल्मीकि है विश्व के आदिकवि तथा विश्व के प्राचीनतम एवं उज्ज्वलतम महाकाव्य रामायण के अमर गायक और रवीन्द्र (जिनका शताब्दी वर्ष विश्वभर में मनाया जा रहा है) है भारतीय साहित्य परम्परा के आधुनिकतम विश्वकवि। प्राचीनतम महाकवि और आधुनिकतम महाकवि की युगान्तर स्पर्शी समता को लक्ष्य कर महात्मा गाँधी ने कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर को भी व्यास और वाल्मीकि की परम्परा का कवि कहा है।

प्रतिभा का दिव्य स्रोत

वाल्मीकि तथा रवीन्द्र—दोनों की काव्य प्रतिभा श्रमजन्य न होकर अन्तःस्फूर्त थी। वाल्मीकि तो प्रारम्भ में अनपढ़ तथा असंस्कृत दस्यु ही थे। केवल राम नाम के दिव्य स्पर्श से उनके अन्तःकरण से काव्यानन्द का वह दिव्य झरना फूट निकला जिसने अपने आनन्द की उर्मियों से सारे विश्व को आप्लावित कर दिया। रवीन्द्र भी विदेशी एवं यंत्र-वत् चलने वाली शिक्षा पद्धति से ऊब कर आठवीं कक्षा में ही विद्यालय को अन्तिम नमस्कार कर बैठे थे। किन्तु जिस रवीन्द्र के बारे में उसके स्कूल के मुख्यध्यापक डॉ. क्रूज ने कहा था कि यह शिक्षा के लिये पैदा ही नहीं हुआ, उसी रवीन्द्र के अन्तर में एक विश्वकवि छिपा बैठा था जो एक दिन अचानक प्रातःकाल के उगते हुए सूर्य के दर्शन में से शत-शत गीतों की स्वर लहरी में जाग उठा। दोनों महाकवियों ने इतिहास के यशोमन्दिर में वह अविनश्वर पद प्राप्त किया जिसका विश्व वाङ्मय में उपमान नहीं मिलता।

रवीन्द्र का वाल्मीकि को अर्घ्य

कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदिकवि वाल्मीकि के व्यक्तित्व से इतने अधिक चमत्कृत हुए थे कि उन्होंने अपनी तरुणावस्था में अपना प्रथम संगीत-नाटक आदिकवि के स्तव में वाल्मीकि-प्रतिभा नाम से लिखा। स्वयं रवीन्द्रनाथ का वाल्मीकि की भूमिका में प्रथम बार नाट्य-मंच पर आना भी वाल्मीकि के साथ उनकी आन्तरिक एकता का द्योतक है। नाटक अनेक स्वदेशी और विदेशी संगीत स्वरों से सुमधुर बन गया था। स्वयं रामायण के बारे में यह लिखते हैं—'रामायण और महाभारत गंगा और हिमालय के समान समस्त भारत की वस्तु जान पड़ती हैं, व्यास और वाल्मीकि तो केवल उपलक्ष मात्र हैं।... यह निश्चय है कि भारत में अपना सर्वस्व महाभारत और रामायण में रख दिया है। इसी कारण सदियों पर सदियाँ बीतती जाती हैं परन्तु महाभारत और रामायण की धारा भारतवर्ष में ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। गाँव-गाँव घर-घर प्रतिदिन ये दोनों काव्य बड़े आदर के साथ पढ़े जाते हैं। मोदी की दुकान और राजा के महलों, सर्वत्र इनका एकसा आदर है। धन्य हैं ये दोनों कविवर, काल के भारी जंगल में इनके नाम तक का पता नहीं रहा, किन्तु उनकी पवित्र वाणी कई करोड़ स्त्री-पुरुषों के घरों में आज भी शक्ति और शान्ति की वर्षा किया करती है। उनकी वाणी आज भी बीती हुई कई सदियों के भावों की अच्छी मिट्टी ला-लाकर भारत के हृदय क्षेत्र को उपजाऊ बनाये हुए है। वह अन्यत्र कहते हैं शान्त रसमय गृहस्थ धर्म को ही अश्रुजल से अभिषिक्त कर रामायण ने उसे महान वीर्य के ऊपर स्थापित किया है।.... भारतवासियों ने रामायण को शिरोधार्य ही नहीं माना है, इसको उन्होंने हृदय सिंहासन पर स्थापित किया है। रामायण भारतवासियों का केवल धर्म ग्रन्थ ही नहीं है यह उनका महाकाव्य भी है। आदिकवि आदि काव्य दोनों को श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए कविगुरु लिखते हैं, 'मैं केवल इतना ही जताना चाहता हूँ कि वाल्मीकि के रामचरित को पढ़ने वाले पाठक केवल कवि का काव्य न समझे, उसे समस्त भारतवर्ष का रामायण समझे। ऐसा समझने से ही वे रामायण के द्वारा भारतवर्ष का और भारतवर्ष के द्वारा रामायण का यथार्थ रूप देख सकेंगे।' रवीन्द्र की श्रद्धा स्वयं मुखर हो उठी है, 'रामायण उन्हीं अखण्ड अमृत के प्यासों का चिर परिचय धारण किए हुए है। इसमें जिस भातृ-प्रेम, जिस सत्य निष्ठा, जिस पातिव्रत्य और जिस प्रभु भक्ति का वर्णन है उसके प्रति यदि हम लोग हृदय की सरल श्रद्धा और भक्ति बनाए रख सकें तो अवश्य ही हमारे कारखाने के मकान के झरोखों में महान समुद्र का निर्मल वायु प्रवेश का मार्ग पावेगा।

रामायण में उर्मिला की उपेक्षा

रवीन्द्रनाथ रामायण में लक्ष्मण पत्नी उर्मिला की नितान्त उपेक्षा पर दुःख प्रकट करते हुए लिखते हैं, 'कवि ने अपनी कल्पना के फुहारे की सारी करुणा

जानकी के पवित्र अभिषेक में ही खर्च कर डाली है। किन्तु वही सीता की छाया में घूँघट काढ़े मलिनमुखी इस लोक के सब सुखों से वंचित एक और राजवधू खड़ी है। उसके चिर-दुःख संतप्त नम्र मस्तक पर कवि के कमण्डलु से एक बूँद भी अभिषेक का जल नहीं पड़ा।' वे आगे लिखते हैं, 'मैं कह सकता हूँ कि संस्कृत साहित्य में काव्य यज्ञ-शाला की प्रान्तभूमि में जिन उपेक्षिता स्त्रियों से मेरा परिचय हुआ है, उसमें उर्मिला को ही मैं प्रधान समझता हूँ। शायद इसका कारण यह भी है कि उर्मिला यह नाम बहुत ही मधुर है। इस नाम के समान मधुर नाम संस्कृत के काव्यों में और नहीं है।... अतएव यह नाम रखने के लिये, कम-से-कम मैं वाल्मीकि मुनि का कृतज्ञ हूँ। कविगुरु (वाल्मीकि) ने उर्मिला के साथ बहुत अन्याय किया है, किन्तु यह विशेष सौभाग्य की बात है कि देवसंयोग से उर्मिला का नाम माण्डवी या श्रुतकीर्ति नहीं रखा। अपनी कला रुचिर शैली में उस उपेक्षिता देवी के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए लिखते हैं—'उर्मिला ने पहले पहल जिस दिन माँग में सिन्दूर लगाया था, उसी दिन के समान वह सदा ही नववधू है।....और जिस दिन अयोध्या अंधेरी करके दोनों भाई सीता को साथ लेकर तपस्वी के वेश से वन गए थे क्या उस दिन भी यह नववधू राजभवन के किसी एकान्त कमरे में डण्ठल से गिरी हुई कली के समान मूर्च्छित नहीं हुई थी? उस दिन के उस विश्वव्यापी विलाप में इस फट रहे छोटे से कोमल हृदय का असह्य शोक क्या किसी ने देखा था? जिस ऋषि का हृदय विरहिणी क्रौञ्च-वधू के वैध्व्य दुःख को पल भर भी न सह सका उन्होंने भी आँख उठाकर एक बार इस दुखिया की ओर नहीं देखा।' रवीन्द्र का हृदय रो उठता है, 'बेचारी उर्मिला सीता की अश्रुधारा के साथ एकदम बह गई।....सीता और उर्मिला के दुःखों की कोई तुलना न कर बैठे, इसी भय से क्या महाकवि ने सीता के सुवर्ण मन्दिर के पारस से इस शोक से उज्ज्वल दुखिया को एकदम निकाल बाहर किया है? सीता के चरण के पास भी बैठाने का उन्हें साहस नहीं हुआ।' यह बात सर्वविदित ही है कि रवीन्द्र के उक्त विचारों के कषाघात से राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त के हृदय में 'साकेत' नामक महाकाव्य प्रस्फुटित हो निकला।

बाली वध का ऐतिहासिक दिवस

जहाँ शरद पूर्णिमा स्वयं महर्षि वाल्मीकि का जन्म जयन्ती उत्सव है वह वाल्मीकि रामायण के अन्तर्साक्ष्य के अनुसार यह मातृद्रोही बाली के संहार का भी दिवस है। आदिकवि का वर्णन है—

इन्द्र ध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले।
आश्वयुक्सभये मासि गतश्रीको विचेतनः।
वाणपसंरूद्ध कण्ठस्तु वाली चार्तस्वरः शनैः।।

(वा. रा. कि. काण्ड सर्ग 16 श्लोक 37)

आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन इन्द्र ध्वजोत्सव के अन्त में जिस प्रकार ऊपर फेंका गया इन्द्रध्वज पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ता है, उसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु के अन्त में बाली, श्रीहीन, अचेत तथा आँसुओं से रूँधे हुए कण्ठ वाला होकर धराशायी हो गया तथा शनैः-शनैः आर्त्तनाद करने लगा।

वाल्मीकि का शारदी मंगल

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में स्थान-स्थान पर शरद ऋतु का कलारुचिर वर्णन किया है—

पाण्डुरं गमनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्र मण्डलम्।
शारदी रजनी चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम्।।

श्रीराम ने देखा आकाश श्वेत वर्ण का हो रहा है, चन्द्रमण्डल स्वच्छ दिखाई देता है तथा शरद ऋतु की रजनी के अंगों पर चाँदनी का अंगराग लगा हुआ है।

रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है। रामायण में भारत और भारत में रामायण प्रतिष्ठित है।

—विश्वगुरु रवीन्द्र

सर मुहम्मद इकबाल एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर

सर मुहम्मद इकबाल स्यालकोट (पंजाब) के रहने वाले हिन्दू ब्राह्मण परिवार के व्यक्ति थे। अपने अध्ययनकाल में प्रथम में स्वामी रामतीर्थ, गुरु नानकदेव व वेदांत से प्रभावित हुए फिर नीत्शे से। नीत्शे पर जर्मनी से पीएच.डी. की।

मुहम्मद इकबाल बड़ा महाकवि था। इस्लाम का विश्वकवि कहा गया। उसने एक ओर तो वन्देमातरम् का विरोध किया। दूसरी ओर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गीतांजलि पर नोबल प्राइज दिये जाने का विचार किया जा रहा था उसका विरोध किया। इकबाल ने कहा—ये कौन हैं? कलकत्ता के लोग भी तो उसको कवि नहीं मानते। बंग के साहित्य में उसको स्थान ही नहीं है। उसको कोई कवि गिनता ही नहीं है। वह तो गद्य की तरह लिखता है। उसमें लय नहीं, तुक-वुक नहीं, कुछ नहीं। इसको बंगाली भी कवि नहीं मानते और आप इसको दुनिया का Poet (लोरियेट) मान रहे हैं। यह कैसे हो सकता है? और आठवीं कक्षा में पढ़ाई छोड़कर बैठ गया था। रवीन्द्र के दादा बड़े फैशनेबुल थे। उनको लगता था भारत गया-बीता देश हो गया है। इसमें कुछ बचा-बचाया नहीं। भारत का उद्धार हो सकता है तो पश्चिम की कार्बन कापी बनने से ही हो सकता है। इसलिये पश्चिम की सभ्यता की खूब नकल की जाय और पश्चिम की सभ्यता की खूब दासता की जाय। यह उनका विचार था। और लोग तो अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में, कान्वेन्ट में पढ़ाते हैं। पर, उन्होंने कहा—हम तो अंग्रेजी की जो माँ है लैटिन स्कूल में बच्चे को पढ़ायेंगे। 'रवि ठाकुर' को उन्होंने लैटिन स्कूल में भरती करा दिया। लैटिन स्कूल में भरती कराया तो छोटा-सा अबोध बच्चा और लातीनी भाषा उस पर लादी जा रही है। स्वयं रवीन्द्रनाथ लिखते हैं—मेरी जो लैटिन की कापी है प्रारम्भ से अन्त तक सारे वर्ष भर में इतनी कोरी और सफेद रही जितना हिन्दू विधवा का दुपट्टा। स्याही छुआ ही नहीं। तो एक Teacher ने हैडमास्टर से कहा—इस बच्चे को देखो, बिल्कुल बेकार है। प्रारम्भ से अन्त तक कुछ नहीं लिखा। हैडमास्टर ने कहा—ये बच्चे शिक्षा के लिये थोड़े ही पैदा हुए हैं, पढ़ने के लिये रवीन्द्रनाथ पैदा ही नहीं हुआ। जब तक मोटी फीस देते रहते हैं तब तक पैसे लेते जाओ। हमें क्या? पढ़ने के लिये पैदा ही नहीं हुआ।

जो व्यक्ति विश्व भारती शांति निकेतन जैसे विश्वविद्यालय का संस्थापक बनने के लिये और विश्वकवि बनने के लिये पैदा हुआ था उसको विदेशी माध्यम की

स्कूल ने सोचा कि वह शिक्षा के लिये पैदा ही नहीं हुआ। उसके दादा ने सोचा काम नहीं बना भाई। तब उसको उठाकर एक अंग्रेजी स्कूल में भरती किया। अंग्रेजी स्कूल में भरती किया जो बच्चों को गीत सिखाते हैं। गीत में बच्चे हाथ-पैर नचाते हुए खूब गाते हैं। हम गाते थे, सुर में सुर मिलाते थे, हाथ से हाथ मिलाते थे, पैर से पैर मिलाते थे, Education के बड़े-बड़े अधिकारी आते थे। कभी Superintendent तो कभी Governor आते थे, टॉफियाँ इनाम में मिलती थीं। बच्चे बहुत खुश होते थे। पर रवीन्द्र को यह अच्छा नहीं लगता था। वहाँ थियोरिया रटाई जाती। रवीन्द्र को यह सब बिल्कुल न भाता वे लिखते हैं—सब बेवकूफ थे। पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले। अतः वे स्कूल जाते समय किसी उपवन में बैठ, समय बिता घर लौट आते।

काम कुछ बना नहीं। तब छुड़ा दिया उस स्कूल को भी। तब बांग्ला स्कूल में भरती कराया। तो एक पंडितजी थे। मोटी चोटी और हाथ में छड़ी रखते थे। छोटी-छोटी भूल पर हाथ निकालो और छड़ी लगाते थे, खड़ा करते थे। बात-बात पर मुर्गा बनाते थे। बात-बात पर दण्ड देने से सब उनसे डरते थे। वह बड़ा कोमल स्वभाव का बच्चा था। और स्कूल क्या था? जेलखाना! जैसे जेलखाने का दरवाजा बंद हो जाता है वैसे स्कूल का द्वार बंद हो जाता है।

द्वार पर मोटी मूंछवाला जेलर है, वार्डेन जो है जेल के कैदियों पर अनुशासन रखता है, हाजरियाँ होती थीं। वैसे ही जेल में कैदी नं.—एक-दो-तीन हाजरियाँ होती हैं। तो स्कूल भी पूरा जेलखाना था। छोटी-छोटी गलतियों पर मार। तो वह कोमल स्वभाव का बच्चा था। उसने सोचा, यह भी मेरे लिये अनुकूल नहीं है।

बेचारे ने माँ से सुन रखा था। माँ तो स्वर्गवासी हो गई थीं। पर माँ से सुन रखा था कि यदि कपड़े के जूते, केनवस के जूते पहनकर तालाब में डुबो दे और गीले जूते पहनकर सो जाय तो उसको बुखार आ जाता है। तो स्कूल में जाते रास्ते में किसी तालाब में जूते गीले करके किसी पार्क में जाकर सो जाता था कि बुखार आ जाए। ज्वर को बुलाता रहता पर ज्वर नहीं आता। बेचारा, बड़ा दुःखी होता। फिर मजबूरी से स्कूल जाना पड़े। स्कूल से इतना भय लगे। फिर उसने सुना था कि रात में यदि छत पर सो जाय और ऊपर से ओस पड़े तो उससे बुखार आ जाता है। छत पर जाकर सो जाता था। तो वह ज्वर को भी विद्यालय से अधिक प्रेम से बुलाता था क्योंकि विद्यालय अधिक भयावह था। विद्यालय में अत्याचार होता था। कोमल मन के बच्चे के साथ यह व्यवहार ठीक नहीं था।

उनके भवन में नीचे से ऊपर जाने के लिये जंगला था और जंगले में लकड़ी के डंडे लगे हुए थे और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर कमरे में बैठे हुए काम कर रहे थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर रवीन्द्र के पिता हैं। रवीन्द्र ऊपर से नीचे उतर रहा था। उसके हाथ में छोटी-सी छड़ी थी और छड़ी लेकर एक-एक डंडे को मारता

था—ऐ बदमाश! खड़े हो जाओ। ऐ बदमाश, हाथ निकालो, मुर्गा बनो। डंडे से मारता हुआ नीचे उतर रहा था। उन्होंने सोचा, यह क्या बोल रहा है? वे चुपचाप खड़े हैं, देख रहे हैं, वह क्या कर रहा है। 30-32 छड़ें थीं जंगले में। वह सबको मार-मार कर उतर रहा है। उसको देखकर महर्षि देवेन्द्रनाथ को लगा—ओह! इसके साथ स्कूल में जो सारा व्यवहार होता है, उसी ड्रामे को दोहरा रहा है। यह शरारत शिक्षकों की है—छड़ी मारना, खड़ा करना, मुर्गा बनाना। उन्होंने स्कूल में पता लगाया। हां भई, इसका स्कूल में मन नहीं लगता। अतः स्कूल से छुड़ा दिया। आठवीं कक्षा में स्कूल छोड़कर घर बैठ गया।

यदि उसको घर का अच्छा वातावरण नहीं मिलता, अच्छा अध्यापक-ट्यूटर उसको घर पर नहीं मिलता तो शायद सारा संसार एक विश्वकवि से वंचित हो जाता। इसलिये पढ़े जरूर आठवीं कक्षा तक।

तो यह कहे डा. इकबाल, यह कौन है? आठवीं कक्षा पास नहीं है यह लड़का। रवीन्द्रनाथ ने आठवीं कक्षा पास नहीं किया। हमने जर्मनी में जाकर Ph.D. की है, Doctorate की है जर्मनी जाकर, नीत्शे पर मैंने डॉक्टरेट किया है। इसलिये यह जो Nobel Prize है इसको न मिलकर मुझे मिलना चाहिये।

उसने कहा—मैं उर्दू का कवि हूँ, फारसी का कवि हूँ, अरबी का कवि हूँ। मैं अंग्रेजी में लिखता हूँ जर्मन में लिखता है, उर्दू-फारसी में लिखता हूँ।

इस्लाम के देशों में उसकी ख्याति थी। तो 30-32 इस्लामी देशों ने भी जोर लगाया कि Nobel Prize टैगोर को न मिलकर इकबाल को मिले। पर नोबेल प्राइज की कमेटी ने कहा, इकबाल की कविता में अहंकार की बू आती है। और टैगोर के काव्य में ईश्वर समर्पण की महान् अमृतमय गरिमा है। मानव को उठाने में जो टैगोर का कार्य है वह महान् है। इसलिये उन्होंने नोबेल प्राइज टैगोर को दिया।

जब टैगोर को Nobel पुरस्कार दिया तो इन लोगों ने वंदे मातरम् का ही विरोध करना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा, हम वंदे मातरम् नहीं गायेंगे। गांधीजी ने समझौता-वादी नीति से कहा, अच्छा भाई! तुम अपना गीत बना लो। उन्होंने बनाया—

सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तान हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलिस्तान हमारा।

ये बुलबुले हैं हम उसकी गुलिस्तान हैं। बुलबुल क्या करती है? बुलबुल जहाँ गुलाब होता है वहाँ पहुँच जाती है और जब गुलाब सूख जाते हैं तब उड़कर चली जाती है। फूल और बुलबुल में झगड़ा हो रहा है कि गुलिस्तान किसका है? फिजा आकर बतायेगी कि गुलिस्तां किसका है। पतझड़ को आने दो, फूल झर जायेंगे तब पता लगेगा कि गुलिस्तां किसका है? इसलिये भोग के लिये टिके हुए

लोग। इकबाल ने कहा, जिस देश में मयस्सर न हो इंसान को रोटी, उस देश के हर गोसय के गुनगुन जला दो। जिस देश के इंसान को रोटी नहीं मिले उस देश के हर खेत और खलियान को, हर गेहूँ को, अन्न के हर अंकुर को जला दो। रोटी नहीं मिले तो जो रोटी है उसे भी जला दो। कहा कि अंकुर को भी जला दो। जिससे भविष्य में किसी पीढ़ी को कभी अन्न मिल ही न सके। यह कौन भक्ति है? यह भक्ति नहीं भुक्ति है, देशभक्ति नहीं। देशभुक्ति है देश को भोगने की चाल।

देश को भोगो। तो भोगने वाला जो है अपने आपको धोखे से भारतीय कहता रहता है। भारतीयता का शत्रु बना रहता है क्योंकि उसे तो भोगने से मतलब है और जो भक्त है वह कहता है—

फल खाये पेड़ के, गन्दे किन्हे पात,
धर्म हमारा यही है जलेंगे इसके साथ।

वीर सावरकरजी ने भी लिखा है, जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी लिखा है कि वृक्ष को आग लग गई—

आग लगी है वृक्ष में जलने लागे पात
क्यों न उड़ो पक्षी पंख तुम्हारे साथ

तुम्हारे पास पंख है, वृक्ष को आग लग गई है, उड़ते क्यों नहीं हो?

पक्षी कहते हैं—

फल खाये वृक्ष के, गन्दे किन्हे पात।
धर्म हमारा यही है जलेंगे इसके साथ।

जिस देश का अन्न-जल खाया है, जिस देश में महान् पूर्वजों की परम्परा चली है, जो देश हमारी संस्कार भूमि है, जिस देश की मिट्टी तन को लगी है, जिस देश के कण-कण में हमारा इतिहास रचा हुआ है। उसके साथ ही जीयेंगे, उसके साथ ही मरेंगे। इसलिये भारत-भारतीयता की समग्र पूजा शिव-पार्वती की समग्र पूजा है। यह सच्ची देशभक्ति है।

जो अपने को भारतीय कहे और भारतीयता को अस्वीकारे, वह कैसा भारतीय है? वह तो भारतीय होने का ढोंग कर रहा है, भारतीय होने का केवल लाभ लेना चाहता है पर उसके प्रति कर्तव्य से कतराता है। इकबाल हिन्दुओं से कटकर पाक-इस्लामी राष्ट्रीयता का जनक बना—

मुस्लिम हैं हम वतन, सारा जहां हमारा है।

पाकिस्तान की मूल कल्पना इकबाल ने दी और जिन्ना ने उसको साकार किया।

—भाषण से उद्धृत

महायोगी अरविन्द और महाकवि रवीन्द्रनाथ

पाँडिचेरि के परमहंस, भारतीय मनीषा के मणिमुकुट, ब्रह्मानन्द मूर्ति योगीराज अरविन्द घोष के चरणों में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो अनेकानेक श्रद्धांजलियां समर्पित की उनमें से भारत एवं भारतात्मा अरविन्द दोनों के अविनश्वर यश का अमर तराना कितना हृदयहारी है—

एकदा ए भारतेर को न वनता
के तुमी महान् प्राण, कि आनन्द बले,
उच्चारि उठिले उच्च सुनो विश्वजन;
सुन अमृतेर पुत्र जतो देवगरा
दिव्य धाम वासी, आमि जेने छि तांहारे,
महान् पुरुष जिनी आंधारेर पारे
ज्योतिर्मय; तारेजेने, तार पाने चाही
मृत्युरे लंघिते पार, अन्य पथ नाहीं।
आर वार ए भारते के दिवेगो आनी
से महा आनन्दमय, से उदात्त वाणी।
संजीवनी, स्वर्गे मर्त्ये सेई मृत्युंजय।
परम घोषणा सेई एकान्त निर्भय
अनन्त अमृत वानी! रे मृत भारत।
सुधु सेई एक आछे नाहीं अन्य पथ!'

अर्थात्—हे महामनीषी! कौन हो तुम जो एक बार भारत के किसी महारण्य की छाया में किस महानन्द के उच्च श्वास में बोले थे हे विश्वजनो, हे अमृत पुत्रो, दिव्यधाम के वासी देवो, तुम सब मिल कर के सुन लो उस महापुरुष को हमने निश्चय जान लिया, जो अन्धकार से पूर्ण मुक्त है, परम ज्योति उस ज्योति पुरुष को जान, उसी की प्राप्ति से मृत्यु से होंगे पार, अन्य है नहीं मार्ग।

वह महानन्द की जीवन मृत्यु विजय
वाणी वह स्वर्ग मर्त्य के बीच महामृत्युं-

जय वह संजीवन वह चिर अनन्त निर्भय स्वर वार्ता।
हे महाऋषि! अब कौन सुनावे तुझे छोड़
हे मृत भारत तेरे हित न अब अन्य पन्थ।।

सचमुच, योगीराज अरविन्द घोष आधुनिक काल में भारत की प्राचीन गौरव गरिमा के मूर्तिमन्त अवतार थे। वे उन ब्रह्मवर्चस ऋषि-मुनियों की महान् परम्परा के एक ज्योतिष्मान उत्तराधिकारी थे जिनका कार्य जीवन के परम लक्ष्य से भ्रष्ट हुई दुर्बल मानवता को पुनः सत्यं एवं ऋतं के आलोकपथ पर चलाना था। सचमुच उसी आलोकपथ के अनुसरण के सिवा भारत की मुक्ति का कोई अन्य पथ नहीं है। विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द ने भी इसी चिरन्तन सत्य का उद्घोष करते हुए कहा है, 'जब तक भारत उस परम पुरुष परमेश्वर की खोज में लगा रहेगा तब तक यह अमर रहेगा, इसका कोई नाश नहीं कर सकता।'

महान् वंशलता के तेजस्वी फूल—कवीन्द्र रवीन्द्र तथा योगीराज अरविन्द घोष, दोनों बंगभूमि की अमर सन्तान थे। रवीन्द्र कोलकाता के प्रसिद्ध ठाकुर परिवार के कुलदीपक थे। उनके पितामह श्री द्वारकानाथ ठाकुर लक्ष्मी की अपार कृपा के कारण राजा कहलाते थे। परिवार पर सरस्वती की कृपा भी कम न थी। राजा द्वारकानाथ ठाकुर का समूचा जीवन एक दिन सहसा ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र के साक्षात्कार से ही पलट गया तथा अध्यात्म की पावन देहली पर अपना सर्वस्व चढ़ा दिया। और उसकी छाप पड़ी उनके पुत्र देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर। वे जगती तल में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर बन कर पूजित हुए। उसी महर्षि के गृह में 8 मई, 1861 के दिन उस विलक्षण बालक का जन्म हुआ जिसके कारण केवल कोलकाता के ठाकुर परिवार की ही नहीं, वरन् स्वयं भारत माता की यशःकीर्ति सारे विश्व में फैल गई। उसी कोलकाता महानगरी के समुद्रतट से कुछ मील दूर विलायत से भारत आने वाले एक जलपोत में 15 अगस्त, 1872 के दिन प्रातः 5 बजे डा. कृष्णधन घोष के परिवार में वह दिव्य बालक अवतीर्ण हुआ जिसे विश्व ने युग का महानतम योगी, दिव्य जीवन का अमर गायक, पाँडिचेरि के परमहंस योगीराज अरविन्द घोष के रूप में पहचाना। यह दोनों महान् विभूतियां अरविन्द और रवीन्द्र क्रमशः अठहत्तर तथा अस्सी वर्ष के लिए भारत के सांस्कृतिक उपवन में अपनी दिव्य प्रज्ञा का प्रकाश बिखेर कर अन्तर्धान हो गई। श्री अरविन्द रवीन्द्रनाथ से 11 वर्ष पश्चात् इस जगती तल में आए तथा 1941 में रवीन्द्रनाथ के महामौन से 9 वर्ष पश्चात् 1950 में वे भी परम ज्योति में विलीन हो गए। जीवन में 69 वर्षों के लिए यह दोनों महापुरुष एक-दूसरे के सम-सामयिक रहे तथा भारत के सांस्कृतिक जागरण के दो अमर दीपस्तम्भ बन कर आलोकदान करते रहे।

विदेशी शिक्षा के प्रति विद्रोह—कोमल मन वाले बालकों पर प्रारम्भ से ही विदेशी शिक्षा के संस्कार डालना एक भीषण अत्याचार है। रवीन्द्रनाथ को भी बाल्यावस्था में इस अत्याचार का शिकार होना पड़ा। बालक रवीन्द्र का बाल मन विद्रोही हो उठा तथा स्कूल जाने से जी चुराते। इन्हें ओरियंटल मिशनरी स्कूल में भेजा गया पर यहां तो बच्चों से अंग्रेजी में गाना गवाया जाता, थ्योरियां रटाई जातीं। रवीन्द्र को यह बिल्कुल न भाता। अतः वे स्कूल जाते समय किसी उपवन में बैठ समय बिताकर घर लौट आते। कई बार तो केवल इस कारण बीमार हो जाते कि बीमार होने के कारण उन्हें स्कूल से मुक्ति मिलेगी। वे कैनवस के जूते पानी में भिगोकर पड़े रहते। एक अन्य स्कूल में रवीन्द्रनाथ को लैटिन की शिक्षा के लिए भेजा गया पर वहां पर वर्ष के शुरू से अन्त तक उनकी पुस्तक एवं लैटिन की कापी इतनी सफेद रही जितना विधवा के सिर का दुपट्टा। आठवीं कक्षा में ही यह बालक उस शिक्षा पद्धति से विमुख हो उठा, तत्पश्चात् जीवनभर पाठशाला का मुंह न देखा।

श्री अरविन्द की भी समग्र शिक्षा पूर्णतया विदेशी वातावरण में हुई। उनके पिता डा. कृष्णधन पूर्णतया पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे। वे तो इतना भी चाहते थे कि भारत बदलकर ब्रिटेन का नमूना बन जाए। शैशव में ही बालक को स्वदेशी प्रभाव से बचाने हेतु उन्होंने उसे दार्जिलिंग के एक ईसाई स्कूल में भर्ती करवा दिया। वहां अरविंद तथा उसके भाई को छोड़कर अन्य सब बालक अंग्रेज परिवारों के थे। 7 वर्ष के कोमल बालक को इंग्लैंड ले जाया गया ताकि उसे भारतीय संस्कृति प्रभावित न कर सके। मानचेस्टर में उन्होंने लातीनी भाषा पढ़ी तथा लंदन में ग्रीक भाषा पढ़ी। सन् 1889 में वे छात्रवृत्ति पाकर कैम्ब्रिज में गए तथा वहां ग्रीक तथा लातीनी भाषाओं में कैम्ब्रिज के इतिहास में उच्चतम अंक प्राप्त करके ग्रीस तथा लातीनी (रोम) देश के विद्यार्थियों से भी श्रेष्ठ निकले तथा सदा पारितोषिक प्राप्त किया। वे पिता की इच्छा के अनुसार आई.सी.एस. में गौरवपूर्ण सफलता प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए किन्तु सन् 1893 में स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक विश्व विजय से उनके अन्तर में देशभक्ति की अग्नि इतनी प्रज्वलित हो उठी कि आई.सी.एस. को लात मारकर वे मातृभूमि की देहली पर आ विराजे तथा देशसेवा में अपना सर्वस्व लगा दिया।

मातृभूमि का अनन्त प्रेम—कविगुरु रवीन्द्रनाथ के हृदय में मातृभूमि के लिए अगाध प्रेम, असीमित श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति थी। वे भारत में पुनर्जन्म की आकांक्षा करते हुए कहते हैं—'मैं भारत में ही पुनः-पुनः जन्म लूंगा। समस्त दारिद्र्य, दुःख एवं दैन्य के बावजूद भी मैं भारत से ही सर्वाधिक प्यार करता हूं।' एक अन्य स्थान पर वे अपने हृदय की समस्त भावनाओं को मातृभूमि के चरणों में चढ़ाते हुए भावविभोर हो कह उठते हैं—'मेरे हृदय को सुगन्धि का श्रेष्ठ उपहार

भारतमाता के अपने ही फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि संसारभर में अन्यत्र कहां चन्द्रमा इतने माधुर्य के साथ चमकता है जो मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौन्दर्य से आप्लावित कर सके। मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अन्तरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा मेरी यही आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिर निद्रा में मुंद जाने से पूर्व भी इसी धरती का दिव्य प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।

योगीराज अरविन्द घोष के हृदय में भी मातृभूमि के प्रति अथाह श्रद्धा भक्ति का सागर हिलोरें लेता था। उनके भीतर देशभक्ति की ज्योति इंग्लैंड में एक प्रखर ज्वाला के रूप में इतनी तीव्रता से प्रकाशित हुई कि विदेशी सरकार द्वारा प्राप्त आई.सी.एस. के पद को लात मारकर स्वदेश लौट आए। वे हमारे क्रांतिकारी आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्राणप्रेरक एवं दिव्य देवदूत बन गए। वे कहा करते थे—देशभक्ति एक अवतार है जिसका कोई हनन नहीं कर सकता। देशभक्ति को उन्होंने आध्यात्मिकता की भित्ति पर प्रतिष्ठित किया तथा देशसेवा के महान् कार्य में विश्वाधार ईश्वर की ही महान् प्रेरणा का साक्षात्कार किया। वन्दे मातरम्, कर्मयोगिन, तथा धर्म नाम के पत्र प्रारम्भ करके उन्होंने देशभक्ति की ज्वाला को सारे देश में सुलगा दिया था। देव अरविन्द ने भारतमाता का साक्षात् महाशक्ति दुर्गा के रूप में साक्षात्कार किया था।

काव्यानन्द तथा ब्रह्मानन्द—दोनों काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द की सुन्दर समन्वय मूर्ति थे। दोनों ही उच्च कोटि के कवि थे। कवीन्द्र रवीन्द्र के गान गीतांजलि के माध्यम से विश्वप्रसिद्ध हो गए हैं—

जगते आनन्द यज्ञे आमार निमंत्रण।
धन्य हल धन्य हल मानव जीवन।

अर्थात् जगती के आनन्द यज्ञ में अपना आज निमंत्रण पाकर धन्य-धन्य हो उठा है मेरा मानव का यह सुन्दर जीवन।

अपनी मृत्युंजय नामक कविता में रवीन्द्र मृत्यु को चुनौती देते हैं—

जत बड़ो हओ तुमि तो मृत्यु चेये बड़ो नओ।
'आमि मृत्यु चेये बड़ों' एइ शेष कथा बोले,
जाब आमि चले।

अर्थात् हे काल! तुम कितने बड़े हो, नहीं बड़े मृत्यु से कदापि, मैं तो मृत्यु से भी बड़ा हूं, यही कथना करके बस अन्तिम मैं मृत्युंजय गमन कर रहा।

ब्रह्मानन्द के रस के मतवाले हुए कवीन्द्र गाते हैं—

इस ज्योति समुद्र में जो शतदल कमल है,
उसका मकरंद पी कर मैं धन्य हो उठा।

योगीराज भी आंग्ल भाषा के एक महान् कवि थे। उनका महाकाव्य 'सावित्री' युग का महानतम काव्य माना जाता है। मृत्यु देवता को चुनौती देती हुई जागृत मानवात्मा की प्रतीक सावित्री गाती है—

किंतु नर की ओर से यम को कहा सावित्री ने—

प्रेम मेरा सत्य है तो, ज्ञान भी पा लूंगी मैं,
प्रेम मेरा जानता वह सत्य जो जग में छिपा,
जानती मैं, ज्ञान है इक विश्व आलिंगन क्रिया
जानती मैं जीव सारे मेरे ही सब रूप हैं
प्रति हृदय में छिपा बैठा एक देव अनूप है।
जानती मैं कि परात्पर पुरुष जग को पालता
गुप्त बैठा पुरी में वह शांत अक्षर देवता।
मैं उसी की मर्म वाणी क्रिया ज्वाला जानती
विश्व व्यापी सत्य की वाणी के स्वर पहचानती
तथ्य यह मैं जानती जन्म में मेरे उगे सब सूर्य,
यह मैं मानती। जो हमारे अंतरालों में छिपा प्रेमी बना
मरण का आवरण बस उस देवता पर है चढ़ा।
जानती मैं यह कि मानव जन्म है उस योग में,
जहां मन और हृदय शक्ति से वह तुझ को जीत ले।।

दया करो पर ममता तजकर
सेवा करो तजकर अहसान
प्रेम करो पर मोह त्याग कर
भक्ति करो तजकर अभिमान
धन भोगो स्वामित्व त्याग कर
जग भोगो जगपति का जान
तन मन धन सब दान प्रभु का
क्षुद्र अहं तज हो भगवान।।
—डॉ. ओबराय

महाकवि प्रसाद तथा कवीन्द्र रवीन्द्र

काव्य वैभव के स्रष्टा महाकवि जयशंकर प्रसाद तथा अलौकिक तत्त्वद्रष्टा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर माँ भारती के दो ऐसे वरद पुत्र हुए हैं जिन्होंने एक ही समय में अपनी अलौकिक रचनाओं द्वारा न केवल भारतमाता का मुख उजागर किया वरन् विश्व साहित्य को भी अपनी शाश्वत कला के वरदान से समृद्ध बना दिया। इन दोनों कवि-मनीषियों की जीवनधारा एवं भाव धारा में एक अद्भुत साम्य है जो ब्रह्मानन्द के समान ही काव्यानन्द की मूलभूत एकता का परिचायक है।

यशस्वी वंशलता के फूल

दोनों महाकवियों का जन्म अत्यन्त समृद्ध एवं प्रतिष्ठित परिवारों में हुआ था। कविगुरु रवीन्द्रनाथ का जन्म महानगरी कलकत्ता में सन् 1861 में हुआ तथा महाकवि प्रसाद का जन्म ठाकुर से 28 वर्ष पश्चात् सन् 1889 में माघ शुक्ल द्वादशी के दिन भगवान् शंकर की प्यारी पुरी काशी-अघनाशी में हुआ। जहाँ काशी शिव की पुरी है तो कलकत्ता काली माता के नाम पर बसा होने के कारण शक्ति का नगर है। एक अन्य विचित्र संयोग यह है कि सन् 1861 में, जहाँ रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म हुआ वहाँ पण्डित मोतीलाल नेहरू का जन्म भी हुआ। इसके 28 वर्ष बाद 1886 में जिस वर्ष जयशंकर प्रसादजी का जन्म हुआ उसी वर्ष पण्डित मोतीलाल नेहरू के सुपुत्र जवाहरलाल नेहरू का जन्म हुआ। अतः अवस्था की दृष्टि से प्रसादजी रवीन्द्रनाथ के सम्मुख उनकी सन्ततितुल्य ही ठहरते हैं। किन्तु दुर्भाग्य से हिन्दी के रवीन्द्रनाथ जयशंकर प्रसाद, बांग्ला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर से 28 वर्ष छोटे होते हुए भी उनसे 4 वर्ष पूर्व ही सन् 1936 में ही अपना नश्वर शरीर त्याग गए। इस प्रकार प्रसाद और ठाकुर, दोनों 47 वर्ष के लिए समकालीन रहे और प्रसादजी को रवीन्द्रनाथ की अपेक्षा साहित्य सर्जना के लिए 32 वर्ष कम प्राप्त हुए। फिर भी प्रसादजी और कविगुरु ठाकुर का साम्य नितान्त स्तुत्य है।

प्रसादजी के घराने के बारे में प्रसिद्ध था—'सोने की कटोरी में दूध-भात खाते हैं।' कलकत्ता के ठाकुर परिवार की प्रतिष्ठा इतनी थी कि रवीन्द्रनाथ के दादा 'राजा' द्वारिकादास कहलाते थे।

दोनों वंशों में ऐश्वर्य-साधनों के होते हुए भी त्याग एवं निर्लिप्तता का भाव पर्याप्त मात्रा में था। रवीन्द्रनाथ के पिता अपने सरल जीवन एवं उच्च विचार के कारण 'महर्षि' कहलाते थे तथा प्रसादजी के पितामह बाबू शिवरत्न को दानशीलता के कारण उनका साक्षात् होने पर लोग 'महादेव' शब्द उच्चारण करके उनका स्वागत करते थे। इन महान् 'देवों' और 'ऋषियों' की ही पावन वंशलता में प्रसाद और रवीन्द्र जैसे फूल लगे जिन की सुवास से सारा दिग्दिगन्त सुवासित हो उठा।

विश्व के महानतम लोक-शिक्षकों की निजी शिक्षा

प्रसाद और रवीन्द्रनाथ दोनों को विद्यालय में सातवीं-आठवीं कक्षा से अधिक शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था! रवि बाबू तो पाठशाला में अपने अध्यापक के लम्बे डण्डे तथा क्रूर स्वभाव से इतने भयभीत हुए थे कि स्कूल जाते तब अपने भीगे हुए केनवस (कपड़े) के जूतों को पहने कई-कई घण्टे बगीचे में ही किसी वृक्ष की छाया के नीचे पड़े रहते। इस प्रकार वे स्वेच्छा से ज्वर को बुलाते ताकि पाठशाला में जाकर उस निर्दयी अध्यापक का मुख न देखना पड़े। बाबू जयशंकर को 12 वर्ष की अवस्था में पिता के आकस्मिक निधन के कारण सातवीं कक्षा में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

अपने कर्तृत्व से ज्ञानार्जन

दोनों महाकवियों ने स्कूली शिक्षा से निराश होकर अपने ही परिश्रम से महान् ज्ञान का अर्जन किया। जयशंकर प्रसाद के बड़े भाई ने घर पर ही उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। संस्कृत की विशेष रुचि के कारण उन्होंने वेद-पुराण, उपनिषद्, स्मृति, दर्शनशास्त्र का गम्भीर अध्ययन कर लिया। रवीन्द्र बाबू के घर में जो साहित्य एवं कला की महान् परम्परा निर्माण हो चुकी थी, उसी के कारण वे भी ऊँचे से ऊँचा ज्ञान प्राप्त कर सकने में समर्थ हुए। जहाँ घर में प्रत्येक व्यक्ति कलाकार हो वहाँ कोई कला के पारस-स्पर्श से कैसे अछूता रह सकता है। स्कूल से भागे हुए भयभीत बालक रवीन्द्र को घर के साहित्यिक वातावरण ने बचा लिया अन्यथा विश्व एक अनूठे कलाकार तथा शिक्षाशास्त्री के अमोघ वरदान से वंचित रह जाता।

दुःखों के शूलों पर मुस्कराते हुए फूल

दोनों महान् काव्य स्रष्टाओं के जीवन में दुःख का वरदान पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुआ था। राजा द्वारिकादास की उदारता एवं मुक्तहस्तता के कारण जब उनकी मृत्यु हुई तो उनकी फर्म 30 लाख रुपये के घाटे में थी। उनके सुपुत्र महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी गृह-सम्पत्ति भी बाजी पर लगाकर सारा ऋण पाई-पाई

तक चुका दिया। बालक रवीन्द्रनाथ केवल 12 वर्ष के ही थे जब उनकी माता शारदा देवी का देहान्त हो गया। बालक जयशंकर की भी दुःखभरी गाथा प्रायः ऐसी ही है। 12 वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु से उनके जीवन पर वज्रपात हुआ। 17 वर्ष की अवस्था में बड़े भाई की मृत्यु से दूसरा भयंकर वज्रपात हुआ। बड़े भाई की अपूर्व दानशीलता एवं शाही खर्च के कारण पारिवारिक कर्ज तथा नाबालिगपन का लाभ उठाने वाले स्वार्थी सम्बन्धियों द्वारा जायदाद हड़पने के नीच प्रयास—सबका साहसपूर्ण सामना करते हुए जयशंकर प्रसाद ने 1929 तक समस्त ऋण चुका दिया।

दोनों के जीवन की कलिका दुःख की ज्वाला में पड़े रहने के उपरान्त भी कुम्हलाई नहीं। दोनों ही इस दुःख सागर से परे किसी अनन्त सुख की खोज में लगे हुए पथिक थे।

प्रसादजी आत्मकथा में लिखते हैं—

मिला कहाँ वह सुख जिसका,
मैं स्वप्न देख कर जाग गया।
आलिंगन में आते-आते,
मुस्करा कर जो भाग गया।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है,
थके पथिक की पन्था की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे,
क्यों मेरी कन्था की?

प्रसादजी के समान रवीन्द्र के भीतर का भी थका पथिक पुकार उठता है—'जिस प्रकार मंजिल पर पहुँचने से पूर्व ही किसी पथिक का पाथेय समाप्त हो जाय, अथवा धूल के कारण जिसकी वेशभूषा मलिन हो जाय और हृदय में पीड़ा होने लगे, उसी प्रकार मेरी भी शक्ति नष्ट हो जाना चाहती है'। वे पुनः कह उठते हैं—

किन्तु न भूलूं कभी कि,
तुम आ सके न अभी हमारे घर,
यह अपार वेदना जागते-सोते,
मन में रहे अमर।

प्रकृति के स्पन्दन में कविता की लोल लहर

रवीन्द्र तथा प्रसाद दोनों महाकवियों ने प्रकृति की मधुर लीला में ही उस आनन्द का पान किया जो उन के हृदय से काव्यानन्द बन कर फूट निकला। रवीन्द्र बचपन में ही फूलों तथा लताओं से बातें करते रहते। प्रकृति में वह अपनी

सच्ची माता का वात्सल्य पाते थे। गंगा की लोल लहरियों में तिरने वाले जयशंकर प्रसाद के रसिक मानस में भी प्रकृति का असीम प्यार समाया हुआ था। दोनों महाकवि प्रकृति की लीला में उस विराट पुरुष के दर्शन करते थे जिस की सत्ता से ही सारा ब्रह्माण्ड सत्ता को प्राप्त होता है। सन् 1912 में जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि पर नोबल पुरस्कार मिला तभी प्रसादजी साहित्य मन्दिर में अपनी सर्वप्रथम कवितांजलि 'कानन कुसुम' लेकर आए। दोनों ने गीतिकाव्यों की सुमनांजलि से ही सरस्वती के कला मन्दिर पर अपनी अर्चना चढ़ाई।

विराट के लिए जिज्ञासा

उस विराट की सत्ता के प्रति जागी हुई जिज्ञासा वाले प्रसाद की आत्मा पुकार उठी—

हे अनन्त रमणीय! कौन तुम,
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो, क्या हो, इसका तो,
भार विचार न सह सकता।
हे विराट हे विश्व देव,
तुम कुछ हो ऐसा होता भान।

यही प्रखर जिज्ञासा रवीन्द्रनाथ की वाणी में प्रकट हुई—

खेल धान के खेत बीच,
छाया-प्रकाश से आंख मिचौनी,
नीले नभ में कौन बहाता,
धवल मेघ की नाव सलोनी।

विश्व कवि की वीणा

दोनों महाकवि प्रकृति के माध्यम से उस विश्वात्मा की वाणी सुनते हैं—

प्रसादजी के शब्दों में—

छायानट छवि परदे में,
सम्मोहन वेणु बजाता।
सन्ध्या-कुहुकनि अंचल में,
कौतुक अपना भर जाता।

रवीन्द्रनाथ अपनी हृदय वीणा में उसी असीम की वंशी सुनते हैं—

सीमार माझे असीम तुमि,
बाजाओ आपन सूर।

आमार मध्ये तोमार प्रकाश,
ताइ एतो मधूर।।

अर्थात्, हे असीम! तुम मेरी इस शरीर रूपी सीमित वीणा में अपना असीम निजी स्वर भर देते हो। तभी तो मेरे भीतर जो तेरा ही प्रकाश है, वह इतना मधुर लगता है।

भारत भाग्य विधाता

दोनों महाकवियों ने भारतमाता के यश में अलौकिक गीतावलियाँ गाईं। रवीन्द्रनाथ ने 'जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' गा कर भारतमाता के चरणों में एक शाश्वत श्रद्धांजलि चढ़ाई।

महाकवि प्रसाद ने गाया—

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच कर नहीं क्षितिज को
मिलता कहीं किनारा।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ पुनः लिखते हैं—

'मेरे हृदय को प्राप्त होने वाला श्रेष्ठतम सौरभ भारतमाता के फूलों से ही प्राप्त हुआ है और मुझे ज्ञात नहीं कि भूमण्डल के किस अन्य देश में ऐसा चांद चमकता है जो अपने रजत प्रकाश में मेरे व्यक्तित्व को ऐसे माधुर्य से आप्लावित कर सकता। मेरे नेत्रों को स्पर्श करने वाला प्रथम प्रकाश इसी के क्षितिज से प्राप्त हुआ तथा मेरी मनोकामना है कि मेरे नेत्रों के चिर निद्रा में सो जाने से पूर्व इसी धरती का प्रकाश उन्हें चूम ले।'

राष्ट्र-कवि प्रसाद की मनोकामना उनके कण्ठ से गूंज उठी—

जियें तो सदा इसी के लिए,
यही अभिमान रहे यह हर्ष,
निछावर कर दें हम सर्वस्व,
हमारा प्यारा भारतवर्ष।

22 फरवरी 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

अमृत कवि की अमर वन्दना

जिन के अन्तर्यामी की रसवंती किरणों ने अपने स्नेह-स्पर्श से जन-जन के शतदल की पंखुड़ियाँ खोल, आनंद और रस का दाक्षिण्य मूर्त किया, जिन की अनुराग-धारा ने सीमा के वज्र-कपाट तोड़, मनुष्य को अपने ही गवाक्ष से मनुष्यता के दर्शन कराये, उन कविर्मनीषियों को मेरी अजर-अमर चेतना सनातन काल तक श्रद्धांजलि चढ़ा कर भी तृप्त न हो, यही मेरी कामना है। वेदवाणी—वन्दित योगीराज अरविन्द की यह हृदयहारी पुष्पांजलि यदि आधुनिक हिन्दी साहित्य के किसी महानतम कलाकार की वन्दना में चढ़ाई जा सकती है, तो वे हैं आधुनिक हिन्दी काव्य में एक स्वर्णयुग के प्रणेता तथा शाश्वत महाकाव्य 'कामायनी' के अमर गायक—स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद।

सम्वत् 1946 (सन् 1889 ई.) में भारत में दो महान् विभूतियों का प्रादुर्भाव हुआ। दोनों ही युग नायक और युग पुरुष कहलाए। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में मुक्तिदूत बन कर आए, दोनों का राष्ट्रीय गौरव अद्वितीय था। किन्तु एक ने राजनैतिक क्षेत्र में सर्वोच्च प्रतिष्ठा पाई तथा दूसरे ने साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में अमर यशलाभ किया। एक है भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे हैं माँ भारती के वरद पुत्र स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद। माघ शुक्ला द्वादशी का दिन उन की जन्म जयन्ती का दिवस होने के कारण उन की पावन प्रेरणादायिनी स्मृति के लिए अत्यन्त पवित्र है। प्रायः हम राजनैतिक नेताओं की तुलना में साहित्य स्रष्टाओं का महत्त्व बहुत कम आंकते हैं। किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मातृभाषा का स्थान मातृभूमि से किसी प्रकार कम नहीं, वरन् अधिक ही है। व्यास तथा वाल्मीकि का मूल्य कोटि-कोटि देशभक्तों तथा राजनैतिक नेताओं से भी गुरुतर है। इंग्लैंड के एक सुलझे हुए राजनीतिज्ञ का कथन है—'यदि शेक्सपियर अथवा समूचे ब्रिटिश साम्राज्य में से मुझे एक को चुनना हो तो मैं सारे साम्राज्य को ठोकर मार कर भी शेक्सपियर को अवश्य रखना चाहूँगा।' साहित्य संस्कृति का स्रोत तथा समाज का प्राण है। यदि संस्कृति जीवित रहेगी तो जाति भी जीवित रहेगी और महान् सांस्कृतिक मूल्यों से मानवता भी चिरन्तन-जीवी बनेगी। अतः

एक सच्चे कलावन्त की युग-युग कामिनी प्रेरणा सदा-सर्वदा के लिए समूची मानवता की हृदय क्यारियों को हरा-भरा बनाती रहती है।

हिंदी साहित्य प्रांगण में नई चेतना, नया आलोक तथा नई अभिव्यंजना लेकर अवतीर्ण होने वाले महाकवि प्रसाद प्रेम में ही जीते थे तथा काव्य में श्वास लेते थे—

प्रथम यौवन मदिरा से मत्त,
प्रेम करने की थी परवाह।
और किसको देना है हृदय,
चीन्हने की थी तनिक न चाह।

प्रसादजी प्रेम के सभी अंगों-प्रत्यंगों का हृदयहारी चित्रण करते हैं। उनके मत में सच्चा प्रेम जीवन का सार है, हृदय की सूनी कुटिया की दीपशिखा है—

बुझ न जाय यह सांझ किरण सी
दीपशिखा इस कुटिया की
शलभ समीप नहीं तो अच्छा
सुखी अकेले जले यहां।।

प्रेमी के संयोग से जो कुतूहलकारी आह्लाद होता है और वियोग से जो असह्य दुःख होता है उसका मार्मिक चित्रण इस महाकवि की अमर लेखनी से चित्रित हुआ है।

प्रसादजी के 'आंसू' की तुलना का वियोग-श्रृंगारात्मक काव्य संभवतः समूचे हिंदी साहित्य में मिलना कठिन है। आंसू के लघु कणों का पात क्या हुआ मानो पृथ्वी-आकाश लुट गए हों—

बुलबुले सिंधु के फूटे,
नक्षत्र मालिका टूटी।
नभ-मुक्त-कुन्तला धरणी,
दिखलाई देती लूटी।।

पर कवि की हृदय वीणा का सब से मुखर स्वर समरसता का है। वही कवि का मानवता को सन्देश है—

मानव जीवन वेदी पर,
परिणय है विरह मिलन का।
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे,
है खेल आंख का, मन का।।

प्रसादजी की कामायनी में सुख और दुःख के कगारों के बीच में बहने वाली आनन्द मन्दाकिनी का प्रसाद मिलता है—

जीवन धारा सुन्दर प्रवाह
सत सतत प्रकाश सुखद अथाह
सुख-दुःख की मधुमय धूप-छांह
तूने छोड़ी यह सरल राह।।

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया के समन्वय से ही आनन्द का आस्वादन होता है। जीवन में सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के समन्वय का स्वर उस अमर महाकवि के अमर महाकाव्य में गूंज रहा है। इसी उच्च गवाक्ष से उस अनश्वर कलावंत ने मानव को मानवता के दर्शन कराए। यहीं उस कविर्मनीषी ने जन-जन के हृदय कमल की पंखुड़ियाँ खोल उस के भीतर के आनन्द की रसवंती स्रोतस्विनी को प्रवाहित किया है।

उस रसावतार, आनंदवर्षी, अमर कलाकार श्री जयशंकर प्रसाद के चरणों में हमारी कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ एवं असंख्य कोटि नीराजनाएँ सादर समर्पित हैं।

1 फरवरी 1958
'मिलाप' में प्रकाशित

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

श्रीविष्णुपुराणे, 2/3/241

देवगण भी निरंतर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं।

काव्य वैभव के स्रष्टा—प्रसाद

माघ शुक्ला द्वादशी का पावन दिवस आधुनिक काल के महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म-जयन्ती दिन है।

भारतीय संस्कृति के अमर गीतकार स्वर्गीय प्रसादजी, माता सरस्वती की, भारत को एक अपूर्व देन थे। प्रसादजी तो साक्षात् पारस ही थे। माँ भारती के इस वरद पुत्र ने साहित्य के जिस भी खण्ड को छुआ, वही स्वर्ण कांति के समान देदीप्यमान हो उठा।

सन् 1889 के भाग्यशाली वर्ष ने भारत को दो महान् विभूतियों का दान दिया। माघ शुक्ला 12 के दिन तो प्रसादजी का प्रादुर्भाव हुआ तथा इसी वर्ष के नवम्बर मास में पण्डित जवाहर लाल नेहरू का जन्म हुआ। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रसादजी का आधुनिक साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान है जो स्थान युग की राजनीति में पण्डित नेहरू को प्राप्त है।

यह खेद का विषय है कि हमने साहित्यकारों को राष्ट्र निर्माताओं की कोटि में गिनना ही भुला दिया है। एक महान् साहित्य स्रष्टा केवल एक युग का प्रेरक ही नहीं वरन् युग-युग का प्रेरक बन जाता है। हमें लार्ड मैकाले के शब्द नहीं भूलने चाहिए, 'यदि मुझे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य अथवा शेक्सपियर में से एक को चुनने के लिए कहा जाय तो मैं निश्चय ही भारत में बरतानवी राज्य को ठोकर मारकर शेक्सपियर को रखना चाहूँगा। सच्चे साहित्यकार ही राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं। उन्हें भुलाकर तो हम कंगाल हो जाते हैं। इसी कारण जिन देशवासियों ने प्रसाद की कामायनी के काव्यानन्द का मधु मधुर आस्वाद नहीं लिया वे ही भारत में अंग्रेजी को राज्य भाषा के रूप में लादे रखने का प्रलाप करते रहते हैं।

प्रेम में श्वास लेने वाले तथा गीतों में बोलने वाले इस महाकवि की हृत्तंत्री का मुखरतम स्वर प्रेम जो मांसलता से आकर अतीन्द्रियता की ओर उड़ान भरता है, जो और ऊँचे उड़ कर विश्व के निगूढ़ रहस्यों को अपने आलिंगन में भर लेने को आकुल हो उठता है—

छायानट छवि परदे में,
सम्मोहन वेणु बजाता
सन्ध्या-कुहुकिन-अंचल में,
कौतुक अपना भर जाता।

उस प्रेम में प्रसादजी ने सकल मानवता को बांध लिया है। उनके प्रेम से राष्ट्रीयता का क्षेत्र कैसे अछूता रह सकता था।

अपने प्यारे स्वदेश की महिमा में वे गाते हैं—

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम
किरणों का दे उपहार।
उषा ने हंस अभिनन्दन किया,
और पहनाया हीरक हार।।
जगे हम लगे जगाने,
विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योमतमपुंज हुआ तब नाश,
सकल संसृति हो उठी अशोक।

× × ×

वही है रक्त वही है देश,
वही साहस है वैसा ज्ञान।
वही है शांति वही है शक्ति,
वही हम दिव्य आर्य सन्तान।
जिएं तो सदा इसी के लिए,
यही अभियान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व,
हमारा प्यारा भारतवर्ष।

प्रसादजी के एक इसी गीत की प्रेरणा बंकिमचन्द के 'वन्दे मातरम्', कविगुरु ठाकुर के 'जन गण मन अधिनायक जय हे' अथवा पण्डित नेहरू के अच्छे से अच्छे राष्ट्रोद्बोधक भाषण से किसी प्रकार भी कम नहीं है।

अपने हृदय में स्वदेश भक्ति की चिनगारी तथा आंखों में भारतमाता के उज्ज्वल भवितव्य का चित्र लेकर इस अमर चितेरे ने अपनी तूलिका को अपने हृदय में डुबो कर ऐसे चित्र आंके हैं जिनके दर्शन मात्र से रोम-रोम पुलकित हो जाता है।

आज जब देश को जागरण के मन्त्र की आवश्यकता है, देश के कोटि-कोटि हृदयों में मातृभूमि के प्रेम का ज्वार उभारने वाले इस गीत में हम प्रसादजी के हृदय की मूर्त आकांक्षा का दर्शन करें—

हिमाद्रि तुगं शृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला,
स्वतन्त्रता पुकारती-
अमर्त्य वीर पुत्र हो,
दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है,
बढ़े चलो! बढ़े चलो!!

दैनिक 'वीर अर्जुन' जालन्धर में प्रकाशित

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

मनुस्मृति

'इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों के समीप जाकर भूमण्डल के सम्पूर्ण मनुष्यों को अपने-अपने चरित्र (आचरण) की शिक्षा लेनी चाहिए।'

× × ×

सुखमय जीवन के लिये नीति के साथ प्रीति का और स्वार्थ के साथ परमार्थ का सामंजस्य साधना आवश्यक है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

साहित्य के अमर शहीद—मुंशी प्रेमचन्द

'आत्मोन्नति के लिए कठिनाइयों से बढ़कर कोई विद्यालय नहीं, कठिनाइयों में ही ईश्वर के दर्शन होते हैं और हम उच्चतम शक्तियाँ पाते हैं। जिसने कठिनाइयों का अनुभव नहीं किया, उसका चरित्र बालू की भीत है जो वर्षा के पहले ही झोंके में गिर पड़ती है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। महान् आत्माएँ कठिनाइयों का स्वागत करती हैं, उनसे घबराती नहीं क्योंकि यहाँ आत्मोत्कर्ष के जितने मौके मिलते हैं, उतने और किसी दिशा में भी नहीं मिल सकते।' उपन्यास सम्राट प्रेमचन्दजी के प्रसिद्ध उपन्यास कायाकल्प में एक पात्र के मुख से कहे गए उक्त शब्दों में प्रेमचन्दजी का समूचा जीवन दर्शन गुम्फित है। प्रेमचन्दजी दारिद्र्य की दुःखभरी पगडन्डियों के अमर बटोही थे। प्रेमचन्दजी की स्वीकारोक्ति है, अंधेरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनों तक पहना है। जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आना से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा और चार आना गज से ज्यादा का कपड़ा नहीं खरीदा। वे पुनः लिखते हैं, 'पांवों में लोहे की नहीं, अष्टधातु की बेड़ियाँ थीं और मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर। बचपन में ही आठ वर्ष के नन्हे धनपतराय के सिर से माता की शीतल छाया उठ गई। इस तरह यह अभागा बालक जीवन भर के लिए वात्सल्य के अमृत घूंट से वंचित ही रह गया। इस अनाथ बच्चे के पांवों में न जूते होते न देह पर साबुत कपड़े। अपने गांव लमही से पांच मील दूर काशी में प्रतिदिन पढ़ने आता, दिनभर पढ़ने के बाद ट्यूशन पढ़ाने के लिए जाता और रात्रि के 9 बजे थका-मांदा वापस लौट कर तेल की कुप्पी के सामने टाट पर बैठकर अपनी पढ़ाई करने लगता। उनके पिता ने उनका नाम चाहे धनपतराय रखा था और वे कुछ देर नवाबराय के नाम से भी प्रसिद्ध हुए पर वास्तव में न वे धनपतराय थे न नवाबराय। वे तो गरीबराय और मजदूरराय ही थे। धनपतराय के स्थान पर वे निर्धनपत-रंक थे। माता के ममत्व की एक बूंद जो अमृत के समुद्र से भी अधिक मीठी होती है, प्रेमचन्द के भाग्य में न थी। इसलिए प्रेमचन्द के सारे साहित्य में वात्सल्य की अतृप्त लालसा पुकार-पुकार कर अपनी करुण गाथा गाती है। पिता के पुनर्विवाह से दुःख का दंश और भी भीषणतर हो गया। सौतेली माँ की आंख के लिए बेचारे धनपतराय मानो चक्षुशूल से थे। पिता अपने छोटे बच्चे के

लिए कुछ खरीद कर लाते तो सौतेली माँ कभी भी वह वस्तु बच्चे तक न पहुँचने देती। पिता अपनी असमर्थता पर एक ओर अश्रु बहाते रहते और बालक अपने अभाव पर दूसरी तरफ। प्रेमचन्दजी ने एक कथा में विमाता के दुर्व्यवहार का चित्र खींचा है जिसमें स्वयं उनके अपने जीवन के अनुभवों की प्रतिछाया है। विमाता पुत्र को पीटती है, बालक चिल्लाता है, तुरंत पिता घर में आ जाते हैं। वे बड़े आवेश से पूछते हैं कि 'मेरे बच्चे को किसने पीटा है।' माता के चुप रहने पर वे बालक से पूछते हैं 'कि क्या माता उसे पीटती रहती हैं।' किन्तु माता द्वारा भोजन से वंचित तथा अकारण ताड़ित होकर भी बालक कहता है—'नहीं-नहीं, माँ तो बहुत अच्छी है। वह मुझे बहुत प्यार करती है, मिठाई देती है।' बालक यह इसलिए कहता है कि यदि वह माता की शिकायत करेगा तो दिन भर पिता की अनुपस्थिति में उसे उसी विमाता की निर्दय दया पर जीना पड़ेगा और बदले में वह जो कुछ करेगी वह नरक से भी अधिक भयंकर होगा। निर्धनता ने जीवनभर प्रेमचन्दजी का साथ न छोड़ा। पन्द्रह वर्ष की आयु में उनका विवाह हो गया। वे लिखते हैं, 'उस समय मैं नवें दर्जे में पढ़ता था। घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थी; उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसे की नहीं थी। घर में जो कुछ पूंजी थी वह पिताजी के 6 महीने की बीमारी और क्रियाकर्म में खर्च हो चुकी थी।' एक बार तो उन्हें तंग आकर अपनी चक्रवृद्धि गणित की कुंजी एक रुपये में बेचनी पड़ी क्योंकि घर में (खाने को) कानी कौड़ी न बची थी। जब प्रेमचन्द का नाम हिन्दी जगत् में गौरव की वस्तु बन गया तब भी दारिद्र्य रूपी जीवन संगी ने उनका साथ नहीं छोड़ा। दिल्ली के एक साहित्य सम्मेलन में जब वे पधारे तो मोटी खद्दर का मैला कुर्ता तथा धोती पहने हुए, गले के बटन खुले, मुंह पर अस्त-व्यस्त फैली हुई मूंछों तथा सिर के रूखे बालों के साथ वे एक पूर्ण देहाती दिखते थे। एक बार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने उनके पांव में एक ऐसा जूता देखा जिस के फटे हुए छेद में से उनकी अंगुली निकल आती थी। संवेदना से अभिभूत होकर श्री प्रभाकर ने कहा—'इस देश के बेकार आदमियों की शानदार अटैचियों के लिए तो काफी चमड़ा है, पर आपके जूते के लिए नहीं।' उन्होंने हँस कर बात को टाल दिया। इस तरह जीवनभर दारिद्र्य एवं दुःख का विष पी कर भी प्रेमचन्दजी ने समाज को साहित्य की सुधा का पान कराया। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मत में दारिद्र्य के विद्यालय में जिसका शिक्षण नहीं हुआ वह अत्यन्त अभागा है। प्रेमचन्दजी का साहित्य उनकी वेदना का वरदान है।

आत्मेव आत्मना तुष्ट

प्रेमचन्दजी के भीतर एक शानदार दुनिया बसी हुई थी। इसलिये वे किसी भी बात के लिए दुनिया के द्वार पर भिखारी न थे। सांसारिक वस्तुओं के अभाव उनको विचलित न कर सकते थे। संभवतः इसी कारण जीवन भर दुःख-दारिद्र्य की भट्ठी

में तप कर भी उन्होंने जीवन के पुष्प को सांसारिक ताप से झुलसने नहीं दिया। वे अपने में रमे रहते थे और इस काम के लिए उन्हें किसी उपकरण या वातावरण की आवश्यकता न थी। वे अन्य साहित्यकारों की तरह 'मूड' के गुलाम न थे। वे जब चाहते अच्छे से अच्छा साहित्य रच सकते थे। उनमें दम्भ या यश की लिप्सा भी न थी। वे अपने में रमण करने वाले गीता के स्थितप्रज्ञ पुरुष थे। अपने मकान की सील भरी ड्योढ़ी में जहाँ मच्छर-मकड़ी का नित्य नृत्य चलता रहता था, वे पेट के बल औंधे लेट कर अमर साहित्य की रचना करते थे।

दुःखों के शूलों पर मुस्कराता हुआ फूल

प्रेमचन्दजी दुःख के शूलों पर पल कर भी निरन्तर मुस्कराने वाले फूल के तुल्य थे। एक गुलाब के फूल के चारों ओर तेज शूल तने रहते हैं—एक शूल इतना तेज कि तनिक हवा के झोंके से कोमल गुलाब के कलेजे को चीर डाले। पर सब ओर से कांटों से घिर कर भी फूल जीवन की अन्तिम घड़ी तक मुस्कराता रहता है। फूल को सुमन कहते हैं। सुमन का अर्थ है अच्छे मन वाला। जिसके मन में मैल नहीं, किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष नहीं उसे भय, चिन्ता या दुःख का कोई कारण नहीं। प्रेमचन्दजी मन के इतने साफ थे कि भयंकर दुःखों के उपरान्त भी उनके सरल ग्रामीण मुखमण्डल पर मुस्कान की विमल रेखाएं प्रायः खेलती रहतीं। उनकी बातचीत में हास्य का सुन्दर पुट रहता तथा सांसारिक साधनों के अभाव के उपरान्त भी वे हृदय के बड़े धनी थे। जब कभी वे बातचीत का प्रसंग बदलना चाहते तो अपने और उस बात के बीच में हंसी की एक दीवार खड़ी कर देते। एक बार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने उनके छपे हुए एक अंग्रेजी पत्र को देखकर उनसे पूछा, 'अपने मित्रों को आप अंग्रेजी में पत्र क्यों लिखते हैं?' प्रेमचन्दजी ने तुरंत उत्तर दिया, 'क्योंकि अब मैं बी. ए. पास हो गया हूँ।' और इतने जोर से हँसे कि श्री मिश्र की 'बेअदबी और बहस, दोनों दब गईं।' श्री मिश्र ने एक बार पूछा, 'प्रेमचंदजी! आपने लिखना कैसे प्रारम्भ किया?' वे तुरंत बोले—'जी! दवात-कलम और कागज लेकर।' और फिर जोर से हँस पड़े। एक अन्य अवसर पर श्री मिश्र ने पुनः पूछा—आप कैसे कागज पर कैसे पेन से लिखते हैं 'वे बहुत जोर से हंसे और तब बोले'—'ऐसे कागज पर जनाब! जिस पर पहले कुछ न लिखा हो और ऐसे पेन से जिसका निब टूटा न हो।' प्रेमचन्दजी के ओंठ सदा हँस पड़ने को बेचैन से रहते थे। उनके हास्य के पुटों के साथ अट्टहास के सम्पुट भी अत्यन्त मधुर होते थे। एक बार श्री जैनेन्द्रजी उन से मिलने गए तो वे बातों-बातों में दवा लाना भी भूल गए। जब भीतर से दवा लाने की याद दिलाई गई तो वे बोले—'जरा दवा ले आऊं जैनेन्द्र! देखो, बातों में कुछ खयाल ही नहीं रहा।' और इतनी जोर से कहकहा लगाकर हँसे कि छत के कोनों में लगे मकड़ी के जाले हिल उठे।

कंगाल का महादान

प्रेमचन्दजी का साहित्य एक कंगाल का महादान है। उस अनन्तदानी महापुरुष ने भगवान् शंकर के समान जीवन का विष पी-पी कर समाज को अमृत का दान दिया। जिस समाज की रूढ़ियों एवं कुरीतियों का दंश सहा, उसी समाज के कल्याण के लिए जीवन भर साधना की तथा उस साधना का सुफल अविनश्वर साहित्य के रूप में प्रदान किया। दुःखों की भट्ठी में तपकर वे कुन्दन बन गए थे। जिस समाज ने उन्हें न धनपतराय रहने दिया न नवाबराय, उसी समाज के ऊपर वे प्रेम की चन्द्रिका का वर्षण करते हुए प्रेमचन्द बन कर चमके। जिस प्रकार से जल ताप द्वारा वाष्प बनकर उड़ जाता है किंतु ताप देने वाली जगती को ही शीतलता देने के लिये मेघ बनकर बरसता है, उसी प्रकार प्रेमचन्दजी भी भारतीय समाज के ताप-तप्त धरातल के लिए कल्याण-घन प्रमाणित हुए।

जीवन का खेल

प्रेमचन्दजी जीवन को एक खेल के तुल्य मानते थे। अतः एक खिलाड़ी के से साहस एवं धैर्य के साथ वे जीवन के सुख-दुःख का स्वागत करते थे। श्री दयानारायण निगम के पुत्र की मृत्यु पर उन्होंने लिखा—'खेल में शरीक हो कर हम खुद हार-जीत को बुलाते हैं।....जो खेल में शरीक होगा वह बखूबी जानता है कि हार और जीत दोनों ही सामने आएंगे। इसलिए उसे हार से मायूसी नहीं होती, जीत में फूला नहीं समाता। हमारा काम तो सिर्फ खेलना है, खूब दिल लगा कर खेलना, खूब जी-तोड़ कर खेलना, अपने को हार से इस तरह बचाना गोया हम संसार की दौलत खो बैठेंगे। लेकिन हारने के बाद, पटखनी खाने के बाद गर्द झाड़ कर खड़े हो जाना चाहिए और फिर खम ठोंक कर हरीफ (प्रतिद्वन्द्वी) से कहना चाहिए कि एक बार और।....आप जैसे खिलाड़ी के लिये शिकवाए तकदीर की जरूरत नहीं।'

जीवन का बीजगणित

प्रेमचन्दजी गणित के विषय में प्रायः शिकायत करते रहे। यह उनके लिए सचमुच एक टेढ़ी खीर बन गया था। वे स्वयं लिखते हैं—'गणित मेरे लिये गौरीशंकर की चोटी था। कभी उस पर न चढ़ सका। इंटरमीडिएट में दो बार गणित में फेल हुआ, और निराश होकर इम्तिहान देना छोड़ दिया। दस-बारह साल बाद जब गणित की परीक्षा ऐच्छिक हो गई तब मैंने दूसरे विषय लेकर आसानी से पास कर लिए।' किन्तु प्रेमचन्दजी चाहे गणित के विषय में कितने ही अयोग्य रहे हों पर वे जीवन का बीजगणित भली-भांति जानते थे। उन जैसा जीवन का कुशल पारखी विश्व साहित्य में भी सम्भवतः विरला ही मिलेगा।

सरल जीवन, उच्च विचार

भगवान् वेदव्यास ने कहा है—**सर्वे जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्राह्मणः पदं।** अर्थात् सब कुटिलता ही मृत्यु पद है तथा आर्जव (ऋजुता, सरलता) ही ब्रह्मपद है। प्रेमचन्दजी बस इस सरलता के मूर्तिमान अवतार थे। तन-मन और आत्मा, सभी में सरलता का दिव्य गुण था। वेशभूषा तो उनकी किसान जैसी थी, चेहरा भी उनका रोबीला न था। उस पर दूर तक देखती नशीली आंखें थी, हँस पड़ने को बेचैन से होंठ थे, चौड़ी पेशानी थी। खिला हुआ रंग था पर इतनी साधुता-सरलता थी कि वह उनकी महानता का प्रतिबिम्ब न हो पाती थी। बम्बई महानगरी से प्रेमचन्दजी ने अपनी पत्नी शिवरानी देवी को लिखा—'मेरा मनोरंजन तो सब से अधिक घर के बच्चों से हो सकता है। मेरे लिए दूसरा कोई मनोरंजन ही नहीं है। खाना भी खाने बैठता हूँ तब भी अच्छा नहीं मालूम होता क्योंकि यहाँ साहबी ठाठ हैं और साहब बनने से मेरी तबीयत घबराती है।' प्रेमचन्दजी जब अपने गांव में रहते तो झाड़ू अपने दरवाजे पर स्वयं लगाते। छोटे बच्चों को दरवाजे पर बिठाकर मिट्टी और पत्तियाँ इकट्ठी कर देते और खेलने के ढंग सिखाते। उस के बाद जब गांव के काश्तकार इकट्ठे होते तो उनसे बातें करते, झगड़ा निबटाते, बच्चों से खेलते भी जाते।

गृहस्थी जीव

प्रेमचन्दजी एक सात्त्विक सन्तुष्ट गृहस्थी जीव थे। बम्बई से पत्नी को पत्र में लिखा....'और मुझे तो तुम लोगों के बिना इतनी बड़ी मुम्बई होते हुए भी सूनी ही मालूम होती है। बार-बार इच्छा होती है कि छोड़-छाड़ कर भाग खड़ा होऊं।' एक अन्य पत्र में लिखा—'अब मैं इस बात को भली-भांति समझने लगा हूँ कि सन्तुष्ट गृहस्थी एक बड़ी भारी नियामत है।' वास्तव में वे बाह्याडंबर से कोसों दूर रहने वाले, अपनी गृहस्थी में ही मग्न, सच्ची लगन वाले साहित्य-सेवी थे।

सब से बड़ी आकांक्षा

अपने 3 जून 1930 के पत्र में उन्होंने लिखा—'मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं। इस समय तो सब से बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हवस नहीं है। हां, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्चकोटि की पुस्तकें लिखूं पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य विजय ही है। मुझे अपने दोनों लड़कों के विषय में कोई बड़ी लालसा नहीं है। यही चाहता हूँ कि वे ईमानदार, सच्चे और पक्के इरादे के हों। विलासी, धनी, खुशामदी सन्तान से मुझे घृणा है। मैं शांति से बैठना भी नहीं चाहता, साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते

रहना चाहता हूँ। हां, रोटी, दाल और तोला भर घी और कपड़े मयस्सर होते रहें।' प्रेमचन्दजी का समस्त जीवन यज्ञमय था। उनका आदर्श एक दीपक था जो तेल की अन्तिम बूंद के बचने तक भी निरन्तर अपने आलोक का दान करता रहता है। उन्होंने भी जीवन के अन्तिम क्षण तक अपना समस्त जीवनरस साहित्य एवं स्वदेश की सेवा के लिए समर्पित करते हुए सेवा की। मृत्यु के द्वार में प्रवेश करने के क्षण तक उनकी अजस्र लेखनी समाज रूपी देवता को अपना अर्घ्य चढ़ाती रही। उनकी मृत्यु, मोर्चे पर दम तोड़ने वाले सैनिक की मृत्यु है। वे सच्चे अर्थों में साहित्य के अमर शहीद हैं जिनका नाम युग-युग तक यश के अमर तरानों में सदा गूंजता रहेगा।

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्।।

भागवत, 11/23/43

मेरे सुख अथवा दुःख का कारण न ये मनुष्य हैं, न देवता हैं, न शरीर है और न ग्रह, कर्म एवं काल आदि ही हैं। श्रुतियां और महात्माजन मन को ही इसका परम कारण बताते हैं और मन ही इस सारे संसार चक्र को चला रहा है।

× × ×

आप सत्यवादिता के नाम पर उच्छृङ्खल मत बनिये। नम्रता के नाम पर दब्बू मत बनिये।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

दक्षिण भारत के कवि बल्लतोल

अपने समय के सबसे महान् मलयाली कवि बल्लतोल थे। 1925 में बल्लतोल ने रवि ठाकुर की शैली में कविताएं लिखकर मलयालम को एक नई दिशा दी। संस्कृत के छन्द छोड़कर आपने प्राचीन मलयालम के छन्द अपनाए। रूप से अधिक महत्त्व काव्य के विषय को दिया और साहित्य को सुधार का साधन बनाया। बल्लतोल ने अपनी कविताओं के सामाजिक तत्त्व को कायम रखते हुए कविता की मधुरता व सुन्दरता को खूब निभाया है। दक्षिण भारत के इस महान् सन्त तथा कवि ने रामायण का भी मलयालम में अनुवाद किया है।

बल्लतोल मलयालम के आस्थावान कवि थे। आप केरल कला मण्डल के संस्थापक भी थे। आपने तामिल साहित्य को अपनी अनुपम रचनाओं से सम्पन्न व गौरवान्वित किया। आपकी सुप्रसिद्ध प्रकाशित पुस्तकें यह हैं मग्दलन मारियम, शिष्यनु मकनु, साहित्य मंजरी, (8 खण्ड) व ऋग्वेद का पद्यबद्ध अनुवाद।

श्री बल्लतोलजी ने महाभारत की एक घटना को मलयालम में लिखा। कथा इस प्रकार है कि धर्मराज युधिष्ठिर प्रतिदिन किसी ब्राह्मण को दान दिए बिना भोजन नहीं करते थे। एक बार वे महाबलि के प्रसिद्ध अतिथि बनकर केरल में रहे थे, उस समय केरल इतना समृद्ध और ऐश्वर्यपूर्ण था कि एक भी व्यक्ति उनसे दान लेने के लिए तैयार नहीं हुआ। इसी घटना के आधार पर उन्होंने केरल के विषय में लिखा 'मरुप्परम्पल्ला' अर्थात् मरुभूमि नहीं।

नटन्नु सर्वत्र तिरक्किकियिदुं जिटच्चतिल्लारेयु मेन्न मूल।
इंट पेट्टुन्नारुटे वासभूविल मुटडडियों प्रार्थनु नित्यदानं।।

घूम-घूमकर खोजने पर भी लेने वाला कोई न मिलने के कारण युधिष्ठिर का दान-नियम जिसके राज्य में न चल सका।

वरिष्ठानामाबलि दीर्घकाल भरिच्च मन्निन्टे मणिक्किटाड़कुल।
वरिक्कयो वामनवृत्तिए का तिरिक्कियो मूलयिलेच्चिल वारान।।

उस महाबलि के शासन में सुदीर्घ काल तक रही भूमि की सन्तान आज क्या वामन की वृत्ति—याचक-वृत्ति स्वीकार करे? जूठन बटोरने की ताक में जगह-जगह बैठी रहे?

कनिंमु कैकालुकल बल्कियिट्टुष्टेंनिटकु शिवावक वेल चेटवान।
धनि प्रभुक्कलक चविट्टुवलाय कनिंनु निल्कु मुतं वल्लितल्ला।।

प्रकृति देवी ने अपनी असीम कृपा से मुझे परिश्रम करने के लिए काम करने के लिए हाथ और पैर दिए हैं। और मेरी यह रीढ़ की हड्डी धनिकों के पैर रखकर चलने के लिए झुककर सोपान बनाने के लिए नहीं हैं।

अनथमे! पुलकोट्यिल्ल जान जिनकनत्त काट्टुत्तुमुञ्ञु चायान्।
मनस्विमार् तन् करुण ननञ्ञु चीयिल्ल नृजीवितं।।

हे विपति! तुम्हारे तेज झोंक से हिल कर झुक जाने वाला तिनका मैं नहीं हूं। मैं अपने मानव-जीवन को मनस्वी लोगों के दनीय अश्रुप्रवाह गीला होकर जीर्ण न होने दूंगा।

अरक्षितस्नेहिवल पिश्च तेण्टुनरर्कुतीप्यिकोरुप्पिट्ङ्ङल्।
ओरर्थिये खिलु पाषपेटिरक्कु माराकषेल परप्पाल्।।

मेरी कामना काम ऐसा किया जाए, ऐसा फैले कि यह इमारतें जो अर स्नेह शीलता के लिए याचकों के लिए बनाई हैं, स्वयं एक याचक के लिए रचक बन जाएं।

करुत्तु नम्माकोरुमप्पट्ट्टु, मरुन्नुभत्योंचित शुचित्वम्।
परुत्तितन् पटुप्पु पेट्टि वरुत्तुमों नां वक्कु तक्कम्?

हमारी शक्ति एक साथ मिल कर प्रयत्न करना हमारी दवा है मानवोचित शुचि। और ये कपास के फूल (बेड़िया) हमारे वस्त्रागार। हम गरीबी को आने के लिए प्रवेशद्वार ही कहां देंगे।

निरुद्ध चैल मपौरुषत्तिल्, चरुटु कूटोल्ल सर्पर वींटुम्।
गुरुपदत्ताक्षर विद्यनेटि, तिरुत्तणं वां धि दुर्विलेखम्।।

मेरे भाइयो, कर से हम निरुद्ध चैतन्य न बनें, अपने अपौरुष में न डूब जाएं। गुरुजनों द्वारा दी जाने वाली विद्या को सीख कर दुर्विधि के लिखे हुए लेख को सुधारें।

तेरुन्नने कर्मठा कुमारो नौरुङ्ङिय ल् पोन विल् कोयोडुक्कां।
भरुप्परपल्ल मषुपकाशालिरुट्टिल् निन्नद्धृतमाय राज्यम्।।

कर्म की दीक्षा लेकर तैयार हो जाएं तो हम सोने की फसल काट सकते हैं। क्योंकि परशु के प्रकाश द्वारा (समुद्र के) अन्धकार से उद्धृत किया हुआ यह भार्गव क्षेत्र कोई मरुभूमि नहीं है।

मलयालम साहित्य के महान् कवि बल्लतोल की अनुपम कविताएं व साहित्य भावी साहित्यकारों के लिए प्रेरणास्रोत हैं।